मार्च / अप्रैल 2025

रूहानी रिश्ता

साइंस ऑफ़ द सोल रिसर्च सेंटर

विषय सूची

4 परमात्मा द्वारा चुने हुए
5 वर्तमान पल
11 सतगुरु की अहमियत
16 सतगुरु की मित्रता
22 हंस का अंतिम गीत
27 दिव्य संबंध
32 प्रभु बिराजे तन–मन्दिर में
34 दृष्टिकोण बनाम वास्तविकता
39 सुख और दुःख
45 सतगुरु की शरण लेना
50 धर्मपरायणता का रथ

रूहानी रिश्ता

Science of the Soul Research Centre
Guru Ravi Dass Marg, Pusa Road, New Delhi-110005, India

Copyright © 2025 Science of the Soul Research Centre®

बिना स्रोत के कुछ लेख और कविताएँ इस पत्रिका के लेखकों द्वारा लिखी गई हैं।

भाग 21 • अंक 2 • मार्च अप्रैल 2025

परमात्मा द्वारा चुने हुए

पंच परवाण पंच परधानु॥
पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु॥
पंचा का गुरु एकु धिआनु॥
जे को कहै करै वीचारु॥
करते कै करणै नाही सुमारु॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु॥
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥
जे को बुझै होवै सचिआरु॥
धवलै उपरि केता भारु॥
धरती होरु परै होरु होरु॥
तिस ते भारु तलै कवणु जोरु॥
जीअ जाति रंगा के नाव॥
सभना लिखिआ वुड़ी कलाम॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ॥
लेखा लिखिआ केता होइ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु॥
केती दाति जाणै कौणु कूतु॥
कीता पसाउ एको कवाउ॥
तिस ते होए लख दरीआउ॥

कुदरति कवण कहा वीचारु॥
वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥
तू सदा सलामति निरंकार॥

गुरु नानक देव जी, *जपुजी साहिब*

वर्तमान पल

इनसान ने अपनी ज़िंदगी में वर्तमान पल को सबसे कम आँका है, सबसे कम अहमियत दी है। हम यादों, पछतावों और आत्म-ग्लानि के कारण अतीत में उलझे रहते हैं और ख़ुद ही समझ-बूझकर भविष्य का अनुमान लगाने की कोशिश करते हैं, जिससे हमारा मन चिंताओं और परेशानियों से भर जाता है। तो फिर, अभी इस वर्तमान पल के लिए हमारे पास वक़्त ही कहाँ है?

अगर हम तर्कपूर्ण ढंग से सोचें, तो गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फ़ायदा होगा? अतीत को फिर से जीया नहीं जा सकता, सही नहीं किया जा सकता, सुधारा नहीं जा सकता। यह बीत चुका है। सतगुरु यक़ीनन चाहते हैं कि हम अपनी ग़लतियों से सीखें; साथ ही समझाते हैं कि हम उन्हें न दोहराएँ। उन निराशा से भरी यादों में डूबे रहने का कोई फ़ायदा नहीं; ऐसी यादें हमारे आज यानी वर्तमान पल को आशावादी बनाने में कोई सहायता नहीं करतीं।

जहाँ तक भविष्य की बात है, यह उस लॉटरी की तरह है जिसका कोई भरोसा नहीं है। अतीत के अनुभवों के आधार पर हम अपना मन कई आशाओं, आशंकाओं और उम्मीदों से भर लेते हैं। लेकिन इस बात की कोई गारंटी नहीं कि बीत चुके कल के अनुभवों और परिणामों के आधार पर हम आनेवाले कल की भविष्यवाणी कर सकते हैं। हम सब मानते हैं कि ज़िंदगी में दो बातें ही अटल हैं—बदलाव और मौत। लेकिन भविष्य को लेकर, ये दोनों न तो हमें ख़ुशी दे सकती हैं, न ही हमारा आत्म-विश्वास बढ़ा सकती हैं। अब चाहे यह बात हमें पसंद आए या न आए, हम इन दो अटल सच्चाइयों से बच नहीं सकते।

मृत्यु के बारे में स्वामी जी महाराज के वचन हैं:

डरते रहो काल के भय से। ख़बर नहीं कब मरना॥
स्वाँसो स्वाँस होश कर बौरे। पल पल नाम सुमिरना॥

यहाँ की ग़फ़लत बहुत सतावे। फिर आगे कुछ नहिं बन पड़ना॥
जो कुछ बने सो अभी बनाओ। फिर का कुछ न भरोसा धरना॥

सारबचन संग्रह

स्वामी जी महाराज ने साफ़-साफ़ शब्दों में असलियत हमारे सामने रखी है। भविष्य में मौत हर किसी को आनी है। इसलिए सबसे बड़ा सवाल यह है कि हम अपने क़ीमती पलों को कैसे जी रहे हैं जबकि मौत हर पल हमारे नज़दीक आ रही है? हो सकता है कि हममें से कुछ एक मृत्यु का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हों, जबकि कुछ लोगों के मन में इसकी दहशत हो। हमारी जो भी निजी सोच है, हम सबके पास ये पल हैं जिन्हें मौत के आने से पहले हमें जीना है। यह फ़ैसला हमें लेना है कि इन्हें कैसे जीएँ। क्या हमारा फ़ैसला रूहानी नज़रिए से आशावादी होगा, लाभदायक होगा या नहीं?

हमारे सतगुरु हमसे क्या उम्मीद रखते हैं कि हम इन पलों को कैसे जीएँ—हम इस बात से अनजान नहीं हैं। हम जानते हैं कि वह चाहते हैं कि दिन में जितना हो सके हम सिमरन करें और सबसे ज़्यादा ज़रूरी है कि हम हर रोज़ अपना भजन-सिमरन पूरे ध्यान, उत्साह और एकाग्रता से करने की कोशिश करें। सतगुरु की इस हिदायत के महत्त्व को समझना आसान है, लेकिन नामदान ले चुके ज़्यादातर जिज्ञासु देर-सवेर यह जान जाते हैं कि इस हिदायत को पूरा करना इतना आसान नहीं है। समस्या यह है कि इस हिदायत को मानने के लिए हमें अपने मन को भजन-सिमरन में लगाना होगा—उसी मन को जो हमें अतीत से बाँधकर रखता है, भविष्य में उलझाए रखता है और वर्तमान में हर तरह से फँसाए रखता है। मन का अपना ख़्याल है कि हमें अपना वक़्त कैसे गुज़ारना है और, अफ़सोस कि सिमरन कभी भी इसकी पहली पसंद नहीं होता।

यह रूहानी सफ़र जो हमने शुरू किया है, वह असल में हमारी आत्मा का सफ़र है। यह आत्मा की परमात्मा से मिलाप की एक कोशिश है।

इस सफ़र को पूरा करने के लिए हमें परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति—शब्द से जुड़ना होगा, जो हमारी आत्मा को निज-धाम ले जाएगा। तीसरे तिल पर पहुँचकर ही शब्द के साथ जुड़ा जा सकता है। सिमरन वह ज़रिया है जिसके द्वारा तीसरे तिल पर पहुँचा जा सकता है।

परमार्थी पत्र, भाग 2 में महाराज सावन सिंह जी फ़रमाते हैं:

> *सन्तों का वास्तव में एक ही सन्देश होता है और वे उस सन्देश को समय के अनुसार देते हैं। उनका सन्देश है, "हे आत्मा, तू अपने मूल को भूल गई है। वह मूल या स्रोत सचखण्ड में है और वहाँ पहुँचने का रास्ता शब्द-धुन है, जो तेरे अन्दर है। हम वहाँ तक तेरी रहनुमाई करेंगे।"*

हमें अपने निज-घर की याद नहीं है। हममें से बहुत-से लोग आत्मा के बारे में नहीं जानते। संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि अपने विशुद्ध रूप में आत्मा बहुत निर्मल, प्रकाशमान और तेजपूर्ण है। मगर नीचे इस रचना में आते हुए, यात्रा के हर पड़ाव पर इसका प्रकाश पर्दों में ढकता गया। अब, इस स्थूल जगत में, हमारी आत्मा मन, शरीर और इंद्रियों के प्रभाव के अधीन होने के कारण दब चुकी है और ये तीनों आत्मा को इस रचना के साथ बाँधकर रखने की हर संभव कोशिश करते हैं। मन और इन्द्रियाँ कितने शक्तिशाली हैं, इस बात से हम सब भली-भाँति परिचित हैं। परमार्थी पत्र, भाग 2, में हुज़ूर बड़े महाराज जी हमारी अवस्था को बयान करते हुए फ़रमाते हैं: *"केवल मन ही हमारा शत्रु है क्योंकि इसकी यह कोशिश है कि हमारा ध्यान तीसरे तिल से नीचे-नीचे रहे। हमें मन की ताक़त का पता तब लगता है जब हम सिमरन और भजन करना शुरू करते हैं।"*

जब हम अपने सतगुरु का ध्यान करते हैं और पूरा दिन सिमरन करने की कोशिश करते हैं, तब हम अपने उस रूहानी ख़ज़ाने को और ज़्यादा बढ़ा रहे होते हैं जो हमें पहले से ही दिया जा चुका है। नामदान प्राप्त हो जाने के बाद हम उस शब्दरूपी रत्न को हासिल कर सकते हैं। हमें तन-मन से इस कार्य में जुट जाना चाहिए। ऐसा करने पर ही हम अपना रूहानी ख़ज़ाना

इकट्ठा कर पाएँगे। जितना भी समय हमारे पास बचा है, जहाँ तक हो सके हमें उसका सदुपयोग करना चाहिए। हमें ऐसे कर्म करने चाहिएँ जिनसे हमें अपना आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त हो सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें हर संभव कोशिश करके अपना पल-पल इसमें लगा देना चाहिए।

हमारे सामने चुनौती यह है कि हर रोज़ जब भी हमारा ध्यान भटके, हम इसे सिमरन में लगाएँ। यह कार्य कठिन ज़रूर है, लेकिन जितना हो सके, हमें लगन और प्रेम से इस कार्य को करने का प्रयास करना चाहिए। स्वामी जी महाराज ने पल-पल सिमरन करने का उपदेश दिया है क्योंकि इस समय की गई लापरवाही हमें अंत में बहुत महँगी पड़ेगी।

अपने जीवन में हम सब संघर्ष करते हैं, कड़ी मेहनत करते हैं और मुश्किलों का डटकर सामना करते हैं। हम सब शारीरिक और मानसिक संघर्ष से भली-भाँति परिचित हैं। इसलिए, हम मन द्वारा दी गई चुनौतियों का सामना करने के लिए अच्छी तरह से तैयार हैं ताकि आख़िरकार उसे वश में कर सकें। 'पुरानी आदतें मुश्किल से छूटती हैं' यह प्रसिद्ध कहावत मन के बारे में बिल्कुल सच है। मन अपनी आज़ादी या सत्ता को छोड़ना नहीं चाहता। इसकी जड़ों को धीरे-धीरे कमज़ोर करना हमारा काम है। जब भी हम मन का कहा नहीं मानते, तब हमें गुरुमुख बनने, आत्मा को सशक्त बनाने और शब्द की दिव्य ध्वनि और प्रकाश के नज़दीक जाने का अवसर मिलता है। क्या सचमुच मन के साथ यह अंतिम लड़ाई लड़ी जानी चाहिए?

आत्मा सिर्फ़ मनुष्य जन्म पाकर ही परमात्मा के पास वापस जाने का अपना उद्देश्य पूरा कर सकती है। मगर इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें मन की शक्ति को कम करना पड़ेगा और आत्मा को सशक्त बनाना पड़ेगा। यह दुर्लभ मनुष्य जन्म एक सुनहरा अवसर है, जो हमें आवागमन के चक्र से हमेशा के लिए छूटने के लिए प्राप्त होता है।

स्वर अनेक, गीत एक पुस्तक में महाराष्ट्र के संत कन्होबा के वचन हैं: "तुम्हारे हाथ में कितना बड़ा ख़ज़ाना रखा गया है!... नर-देही पाने से बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता।"

यदि हम मनुष्य जन्म रूपी इस ख़ज़ाने का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, तो इसके महत्त्व को समझते हुए हमें जल्दी से जल्दी तीसरे तिल पर पहुँचकर शब्द से जुड़ने की कोशिश करनी चाहिए। दिन भर संसार के बारे में सोचने के बजाय हमें अपना हर पल सिमरन करने में लगाना चाहिए। जब हम सिमरन करते हैं तब हम सतगुरु के प्रेम के छोटे से ख़ूबसूरत बीज का पोषण करते हैं। इस बीज को बढ़ने और प्रफुल्लित होने के लिए देखभाल और ध्यान की आवश्यकता होती है। कर्तव्य या आदत के बजाय प्रेम और लगन से भजन-सिमरन करने पर हम आध्यात्मिक उन्नति करने में अधिक सफल होते हैं। प्रेमपूर्वक भजन-सिमरन करने पर मार्ग में कुछ भी बाधा नहीं बन सकता; यहाँ तक कि हमारा मन भी नहीं। इस बात में रत्ती-भर भी संदेह नहीं है कि सिमरन हमारे अंदर प्रेम को प्रफुल्लित करने में मदद करता है।

हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी के वचन हैं:

> *लगातार सिमरन करने से हमारे अंदर रूहानी अभ्यास के लिए रूझान पैदा होता है, मन को अभ्यास में लगाने में मदद मिलती है... इसीलिए जब भी हमें समय मिले या जब भी हमारा मन ख़ाली हो, हमें सिमरन करना चाहिए।*
>
> *संत संवाद, भाग 2*

हमें हमेशा कोशिश करते रहना चाहिए। जब भी हमें लगे कि हमारा ध्यान भटक गया है, हमें फिर से सिमरन करना शुरू कर देना चाहिए और इस तरह अपने हर अनमोल पल को अपने सतगुरु के ध्यान में समर्पित कर देना चाहिए। ऐसा करने से आख़िरकार हमारा आध्यात्मिक भविष्य उज्ज्वल होगा। वास्तव में इस उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रतिदिन कोशिश करना फलदायक सिद्ध होगा।

हुज़ूर बड़े महाराज जी *परमार्थी पत्र*, भाग 2 में फ़रमाते हैं:

हिम्मत न हारिए, बल्कि साहसपूर्वक लड़िए। लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई है। मन शब्द-धुन से ज़्यादा ताक़तवर नहीं है। सतगुरु आपके अंग-संग हैं। वे आपकी हर एक गतिविधि को देख रहे हैं। वे आपके साथ आपकी ओर से लड़ाई लड़ने को तैयार हैं। उन्हें अपना मददगार बनाइए। उन पर भरोसा कीजिए। मन से लड़िए और आपको कामयाबी मिलेगी।

सतगुरु की अहमियत

अगर इस बात पर विचार करें कि हम कितना जानते हैं, तो हमें एहसास होगा कि जो कुछ भी जानने के लायक़ है, हम उसका केवल अंश-मात्र ही जानते हैं। हमें केवल इस संसार के बारे में पता है, इसलिए हमारा ज्ञान इसी भौतिक जगत तक सीमित है। अगर ऊँचे रूहानी नज़रिए से देखें तो यह दृश्यमान जगत, संपूर्ण सृष्टि की तुलना में, एक विशाल महासागर में पानी की बूँद-मात्र है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और आध्यात्मिक मण्डलों की विशालता के बारे में सोचें, तो यह संसार बहुत तुच्छ है। हम स्वयं को बहुत ज्ञानी और बुद्धिमान समझते हैं, लेकिन जब हमें पता चलेगा कि हमारा संपूर्ण ज्ञान असीम महासागर के किनारे पर रेत के एक कण से अधिक नहीं है तब हमें अपनी ग़लतफहमी का एहसास होगा?

हमें जीवन के बारे में पता ही क्या है, और हम कैसे तय करते हैं कि हमारे लिए क्या महत्त्वपूर्ण है और हमें किस दिशा में जाना चाहिए? हम इस संसार में स्थूल शरीर में रहते हैं। हमें यह भरोसा है कि समझदारी भरे निर्णय लेने के लिए हमारे पास पर्याप्त ज्ञान है और हम जो भी निर्णय लेंगे उनके परिणाम अच्छे ही होंगे। लेकिन अभी तक हमने हासिल ही क्या किया है? क्या हमें स्थायी ख़ुशी या मुक्ति प्राप्त हो गई है? क्या हम वास्तविकता और भ्रम के बीच के अंतर को जान गए हैं?

हमें जल्द ही यह एहसास हो जाता है कि हम इस संसार में खो गए हैं। हमें नहीं पता कि किसकी शरण में जाना है; हम नहीं जानते कि हमारा मार्गदर्शन कौन कर सकता है। क्या ऐसा कोई है जो वास्तव में ज्ञानी और बुद्धिमान है, जो हमारा मार्गदर्शन करके हमें इस मुश्किल से बाहर निकाल सके? या क्या हम किस्मत में लिखवाकर आए हैं कि उन्हीं गलतियों को बार-बार दोहराते जाएँगे, जो हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण हैं?

पूर्ण संत-महात्मा अपने आध्यात्मिक अनुभव से हमें समझाते हैं कि कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत के सभी प्राणी भ्रम में खोए हुए हैं और इसी

वजह से वे जन्म-मरण के कभी न समाप्त होनेवाले चक्र में फँसकर कष्ट भोगते रहते हैं। हमारे कर्म ही हमें एक योनि से दूसरी योनि में ले जाते हैं। कर्म-सिद्धांत का ज्ञान न होने की वजह से हम अलग-अलग योनियों में अपने पिछले कर्मों का फल भोगते हैं। हम बिना सोच-विचार किए, तुच्छ व क्षणिक लाभ प्राप्त करने के लिए अनगिनत कर्मों का बोझ इकट्ठा कर लेते हैं। हमें एहसास ही नहीं कि यह सृष्टि क्रिया और प्रतिक्रिया, जन्म और पुनर्जन्म, सुख और दुःख का अनंत चक्र है।

संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि मनुष्य-जन्म इसलिए अनमोल है क्योंकि इसे प्राप्त करके ही आत्मा सदा के लिए मुक्ति प्राप्त कर सकती है। मगर मन के प्रभाव के कारण जीवात्माएँ इस सुनहरे अवसर को खो देती हैं। यह जन्म क्षणिक सुखों, इंद्रियों की संतुष्टि और धन-संपत्ति के पीछे भागने में व्यर्थ बरबाद हो जाता है। मन यह नहीं जानता कि इसके कर्म ही इसके बँधन का कारण बन जाएँगे, यह कर्म करता जाता है फलस्वरूप आवागमन के चक्र से और अधिक मज़बूती से बँध जाता है और साथ ही आत्मा को भी बाँध लेता है।

केवल समझदार लोग ही संत-महात्माओं के उपदेश पर ध्यान देते हैं और मानव जन्म के अनमोल अवसर का लाभ उठाते हैं। वे जान जाते हैं कि केवल इसी जन्म में हम अपने अंतर में परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं। मगर जब तक परमात्मा की दया-मेहर से हमारा मिलाप पूर्ण सतगुरु से नहीं हो जाता, हम इस बात से अनजान रहते हैं। सतगुरु ही हमें समझाते हैं कि जीवन के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य-जन्म के अवसर का उपयोग कैसे करना चाहिए। कबीर साहिब का कथन है:

सार आहि संगति निरबाँनाँ, और सबै असार करि जाना॥
अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जाँनियै राँम पियारा॥

कबीर ग्रंथावली

आप इस बात पर बल देते हैं कि दुनियादारों की संगति व्यर्थ है। हम जानते हैं कि अधिकतर संबंध लेन-देन पर आधारित होते हैं, क्योंकि उन सभी में स्वार्थ की भावना होती है। हर इनसान अपनी महत्वाकांक्षाओं को प्राथमिकता देता है। हालाँकि, संतजनों के सिवाय दूसरों को शत्रु मानना निर्दयतापूर्ण लग सकता है, लेकिन हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमारा सच्चा दोस्त कौन है। यक़ीनन, जो दिल से हमारी आत्मा की सर्वोत्तम भलाई चाहता है, वही हमारा दोस्त हो सकता है और वह दोस्त हमारे सतगुरु हैं।

उन्हें केवल हमारी आत्मा की चिंता है, इसीलिए वह हमारा मार्गदर्शन करते हैं ताकि हम इस स्थूल जगत से बाहर निकल सकें। यदि वे हमारा मार्गदर्शन न करें तो हम अज्ञानतावश अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अनगिनत कर्म करते चले जाएँगे और इस तरह जीवनरूपी दलदल में फँसते चले जाएँगे। यदि अपनी कोशिश से सच्ची मुक्ति प्राप्त करना मुमकिन होता, तो अब तक हम मुक्त हो चुके होते।

सतगुरु जिस तरह से हमारे जीवन में बदलाव लाते हैं, उसका अंदाज़ा ही नहीं लगाया जा सकता। उनके प्यार, मार्गदर्शन, उपदेश और प्रेरणा से हम आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़ रहते हैं। जितनी जल्दी हम उनके हुक्म में रहना शुरू कर देते हैं, हमें उतनी ही जल्दी मुक्ति प्राप्त हो जाती है, साथ ही हमें इस बात का भी एहसास हो जाता है कि सृष्टि में सिवाय उनके कुछ भी हमारे ध्यान के लायक़ नहीं है। आख़िरकार हमें एहसास हो जाता है कि सब कुछ वही हैं।

बहुत-से लोग अपना जीवन परिवार, समुदाय, देश और धर्म के लिए समर्पित कर देते हैं। ऐसे लोगों से प्रभावित होकर हम भी बचपन से ऐसा ही कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश, ऐसे सभी सरोकार जीवनरूपी भ्रम का ही हिस्सा हैं, मगर इनमें कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी शामिल हैं, जिन्हें पूरा करना ज़रूरी है। जीवन में होनेवाली कुछ घटनाएँ हमें पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को प्राथमिकता

देने के लिए विवश कर सकती हैं, मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे ज़िम्मेदारियाँ हमारे आत्मिक उद्देश्य की प्राप्ति की राह में बाधा बनेंगी।

जीवन में एक चीज़ अटल है, जिसे हम अकसर अनदेखा कर देते हैं, वह है हमारी मृत्यु। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह ज़रूरी है कि हम विचार करें कि हम कौन-सा धन इकट्ठा कर रहे हैं। सच तो यह है कि जब हमारी मौत आती है, तो हम इस दुनिया से ख़ाली हाथ जाते हैं। केवल हमारे सतगुरु और हमारी रूहानी दौलत ही मौत के बाद हमारे साथ जाती है। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि जब तक हमें इस मनुष्य जन्म का सौभाग्य प्राप्त है, हम अपना सारा ध्यान अपने आध्यात्मिक अभ्यास में लगाएँ और उस रूहानी दौलत को इकट्ठा करने का प्रयास करें। मृत्यु की उस मुश्किल घड़ी में हमारे लिए और कुछ भी मायने नहीं रखता।

नामदान के समय, सतगुरु द्वारा बतलाई गई भजन-सिमरन की युक्ति वह अनमोल उपहार है जो जीवन के रहस्य को जानने की कुँजी है। अब यह हमारा फ़र्ज़ है कि हम इस कुँजी के साथ आंतरिक द्वार को खोलें और अपने छिपे हुए सामर्थ्य को पहचानें। जब हम दृढ़ लगन और पूरी श्रद्धा से भजन-सिमरन करेंगे तब हमारे सभी संदेह और सवाल समाप्त हो जाएँगे। भजन-सिमरन द्वारा हमारे मन में सतगुरु के लिए प्रेम जाग्रत होगा। जैसे-जैसे यह प्रेम बढ़ेगा, हमारा रवैया अधिक आशावादी होता जाएगा और हम, सतगुरु द्वारा बख़्शी सभी दातों की अधिक क़द्र करने लगेंगे।

धीरे-धीरे हमें यह एहसास होगा कि हम कितने ख़ुशक़िस्मत हैं; हमें कितना अधिक शुक्रगुज़ार होना चाहिए। हमें यह एहसास होगा कि हम कितने भाग्यशाली हैं कि हम एक पूर्ण सतगुरु के शिष्य हैं जो हमें कर्मों के बंधन से मुक्त ही नहीं करवाएँगे, बल्कि जीवन-भर और मौत के बाद भी हमारे मार्गदर्शक और साथी बने रहेंगे। सिर्फ़ वही इस स्थूल जगत से परे भी हमारा साथ निभाएँगे। जब तक वे हमें सुरक्षित रूप से परमात्मा की गोद में नहीं पहुँचा देते, वे सदा हमारे साथ ही रहेंगे। हमारे प्रेम और भक्ति के लायक़ सतगुरु से अधिक क्या कोई और हो सकता है?

प्रकाश की खोज पुस्तक में, हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी के ये वचन हमें प्रेरणा देते हैं:

इस मार्ग के प्रत्येक शिष्य का भविष्य आशापूर्ण है। जब प्रभु ने हमारे लिये नामदान की व्यवस्था की है, तो इसका अर्थ है कि वह चाहता है कि एक दिन हम उसके पास पहुँच जाएँ। अगर यह मालिक की इच्छा है तो ऐसी कौन-सी शक्ति है जो हमें ज़्यादा समय तक यहाँ रोक सके? केवल समय की बात है। जब तक हमारे कर्मों के बोझ हलके नहीं होते और हम इतने निर्मल नहीं होते कि प्रभु के सामने खड़े हो सकें, केवल तब तक का ही सवाल है। परमात्मा किसी मनुष्य को जो सबसे बड़ी दात या बख़्शिश दे सकता है, वह यही है और इसके लिये हमें उसके कृतज्ञ और अहसानमंद होना चाहिये। रोज़ भजन-सिमरन करके और परमात्मा की वाणी पूरे ध्यान के साथ सुनकर हम अपना आभार प्रकट कर सकते हैं। इस संसार से छुटकारा पाने का और कोई उपाय नहीं है। बौद्धिक तर्क, बहस और विवाद हमें कहीं नहीं ले जाएँगे। यह मार्ग करनी का है, कथनी का नहीं।

सतगुरु की मित्रता

मित्रता, हमें प्राप्त अनमोल उपहारों में से एक है। मनुष्य स्वभाव से ही संगति में रहना पसंद करता है और हम सतगुरु को अकसर मित्र की आवश्यकता के बारे में बात करते हुए सुनते हैं।

मित्र कौन है? मित्र वह है जिसे हम पसंद करते हैं, जो हमें जैसे भी हम हैं, उसी रूप में स्वीकार करता है और जिसके साथ प्रेम और विश्वास का ख़ास नाता जुड़ जाता है। मित्र हमारा उत्साह बढ़ाते हैं और हमारे जीवन को संपन्न बनाते हैं। महाराज चरन सिंह जी हमें हमेशा प्रेरणा देते थे कि हमें ऐसे आशावान लोगों की संगति करनी चाहिए जो हमारा उत्साह बढ़ाएँ। ऐसे ख़ास लोगों को ही हम दोस्त कहते हैं।

जैसे-जैसे हमें जीवन का अनुभव होता है, हमें एहसास होता है कि सच्चा मित्र वह है जो मुश्किल समय में हमारा साथ देता है। ऐसा सच्चा मित्र बुरे वक़्त में साथ छोड़ देनेवाले हज़ारों स्वार्थी मित्रों से कहीं अधिक मूल्यवान होता है।

हम जानते हैं कि अध्यात्म में सतगुरु को सच्चा मित्र माना जाता है। डॉ॰ जूलियन जॉनसन अपनी पुस्तक *अध्यात्म मार्ग* में लिखते हैं:

वे हमें बाहर निकलने का मार्ग ही नहीं बताते, बल्कि जहाँ अकेले जाना संभव नहीं है, वहाँ हमारे साथ भी होते हैं।...हमारा परममित्र वही हो सकता है, जो हमें कठिनाइयों से केवल बचना ही नहीं सिखाता, बल्कि ज़रूरी सहायता भी देता है। यही सच्चे सतगुरु की निशानी है।

फ्रांसीसी दार्शनिक और लेखक अल्बर्ट कैमस का एक प्रसिद्ध कथन है, जिसमें उन्होंने लिखा था: "मेरे आगे मत चलो, शायद मैं तुम्हारा अनुसरण न कर सकूँ। मेरे पीछे मत चलो, हो सकता है मैं तुम्हारा नेतृत्व न कर सकूँ। मेरे साथ चलो। केवल मेरे मित्र बनो।"

शिष्यों से बातचीत के दौरान शायद हमने सतगुरुओं को उपर्युक्त हवाला देते हुए सुना होगा, लेकिन सतगुरु के मित्र बनने का क्या अभिप्राय है?

क्या हम इस तरह की मित्रता के महत्त्व की कल्पना भी कर सकते हैं? हम इस मित्रता को किस नज़रिए से देखेंगे?

मान लीजिए कि सतगुरु हमें अपना मित्र बनने का अवसर दें, तो क्या वे हमें अपने साथ फ़िल्में देखने के लिए आमंत्रित करेंगे? या हमें अपने साथ घूमने-फिरने का न्योता देंगे? हमारा ऐसा सोचना निपट मूर्खता होगा। इस बारे में शम्स तब्रीज़ी का फ़रमान है:

> *कितनी विचित्र बात है! तुम परमात्मा से मित्रता को क्या समझते हो, उस परमात्मा से मित्रता को जिसने पृथ्वी रची है, आकाश रचे हैं, और यह सृष्टि रची है? क्या तुम समझते हो कि परमात्मा से मित्रता इतनी आसान है कि बस, तुम जाओ... उसके पास बैठो और उससे बातचीत करो। क्या तुम समझते हो कि यह मित्रता करना उतना ही आसान है जितना एक ढाबे में जाना और खाना शुरू कर देना? यह मित्रता तुम्हारी बे-लगाम कल्पना की उड़ान से भी परे है।*
>
> *शम्स तब्रीज़ी: रूमी के कामिल मुर्शिद*

जब सतगुरु हमारे सामने मित्र बनने का प्रस्ताव रखते हैं तो उनका क्या तात्पर्य होता है? शायद वह ऐसा इसलिए कहते हैं ताकि हम उनकी संगति में स्वाभाविक और सहज रहें, ठीक वैसे ही जैसे हम किसी अच्छे मित्र की संगति में होते हैं। हमारे मन में सतगुरु के प्रति इतना डर है कि हमें उनकी उपस्थिति में सहज रहना असंभव लगता है। हालाँकि, अनौपचारिक स्थिति में, जैसे कि प्रश्न-उत्तर के कार्यक्रमों में, शायद हमें सतगुरु के साथ बातचीत करना आसान लगता हो।

इन कार्यक्रमों के दौरान, हमें सतगुरु और उनके शिष्यों की प्रेमभरी बातें सुनने का मौका मिलता है। उपदेश चाहे कितना भी गहरा क्यों न हो वह बड़ी कुशलता से, धैर्यपूर्वक संतमत के पहलुओं के बारे में हमें समझाते हैं। इन अनौपचारिक सत्रों के दौरान ही हमें सतगुरु के साथ मित्रता का एहसास

होता है, क्योंकि तब वे हमारे लिए, दीवार पर फ़्रेम में लगी एक तस्वीर न होकर, हक़ीक़त बन जाते हैं।

संत संवाद, भाग1 के परिचय में, महाराज जी द्वारा 1950 के दशक में शुरू किए गए प्रश्न-उत्तर के कार्यक्रमों के पीछे की सोच के बारे में विस्तार से बताया गया है। पुस्तक में, इन कार्यक्रमों के संगत पर पड़नेवाले प्रभाव को ख़ूबसूरती से बयान किया गया है:

महाराज जी ने इन शाम के वक़्त होनेवाली मुलाक़ातों को अपनी विदेशी संगत के लिये एक ऐसा माध्यम बनाया जिनसे प्यार, भरोसे और दोस्ती का एक अटूट रिश्ता क़ायम किया जा सके। हर किसी को महसूस होता कि उसकी पूरी तरह से सँभाल हो रही है। महाराज जी के वचन एक सुकून भरा ख़ूबसूरत दायरा बना लेते जिसकी रोशनी में हम अपने जीवन और दुनिया को एक नये नज़रिये से देखते। अपने नेक और विनम्र, लेकिन शाही अंदाज़ से हुजूर महाराज जी अपनी मौजूदगी के हर पल को अपने आकर्षण से इतना प्रेम भरा बना देते कि हम उनके प्यार में सराबोर हो जाते।

जिस तरह महाराज जी अनेक तरह के और बार-बार पूछे जानेवाले सवालों का धैर्यपूर्वक जवाब देते थे, उसी तरह मौजूदा सतगुरु भी धैर्यपूर्वक अपनी संगत के साथ संवाद करते हैं। संभवतः उनकी सबसे अहम और विशेष ज़िम्मेदारियों में से एक ज़िम्मेदारी अपने शिष्यों के साथ उनका प्रेमपूर्ण संबंध है। जैसा कि सूफ़ी उस्ताद शेख़ सादी ने अपने शिष्यों से फ़रमाया:

मेरे अलावा कौन आपसे इश्क़
करने की बात कहने की कोशिश कर सकता है?
क्योंकि दूसरों के पास कोई बुनियाद नहीं है,
इसलिए उनके लफ़्ज़ सच नहीं लगते।

आध्यात्मिक मार्गदर्शक, भाग2

हमारे रूहानी मार्गदर्शक होने के नाते, सतगुरु हमें समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक हैं और जुदाई निरा भ्रम है। वह बहुत विनम्र ढंग से हमारी आध्यात्मिक अज्ञानता के बारे में हमें जागरूक करते हैं। वह हमें समझाते हैं कि हम वास्तव में कौन हैं, हम यहाँ क्यों हैं और मनुष्य-जन्म रूपी इस उपहार का असल में क्या उद्देश्य है।

वह इस मायामय संसार की असलियत पर प्रकाश डालते हैं। वह हमें समझाते हैं कि भजन-सिमरन द्वारा अपने ध्यान को संसार से निकालकर आंतरिक मार्ग पर केंद्रित करना कितना ज़रूरी है। जब हम अपने कर्मों का फल भोग रहे होते हैं, तो उनकी दया-मेहर भरी नज़र हमेशा हम पर होती है। जब हम अपने कर्मों के बोझ से छुटकारा पाने, अपनी आत्मा को आज़ाद करवाने और निज घर वापस जाने की कोशिश कर रहे होते हैं, तब भी वे हमारे मन के संघर्ष से अनजान नहीं होते।

शेख़ फ़रीद ने रूहानी मार्गदर्शक की भूमिका का वर्णन करते हुए फ़रमाया है: "पीर अपने शिष्य की सच्ची सुंदरता को सामने लाने के लिए कार्य करता है। वह शिष्य को हर तरह से तराशता है।"

हम अपने जीवन और अपने रूहानी कायाकल्प में सतगुरु की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में बहुत कम जानते हैं। सतगुरुरूपी ज्योति हमारे भीतर प्रकाश को प्रज्वलित करती है। सतगुरु हमें नामदान इसीलिए देते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि हमारे अंदर आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने की क्षमता जन्मजात है। अपने मार्गदर्शन द्वारा वह हमें आध्यात्मिक तौर पर सशक्त और पूर्ण बनाते हैं। रूहानी अभ्यास द्वारा हमें एहसास होता है कि उन्होंने हमें कितनी अनमोल दात बख़्शी है।

सूफ़ी उस्ताद हज़रत इनायत ख़ान ने बहुत सुंदर ढंग से नाम की दीक्षा के समय ली जानेवाली शपथ को 'वफ़ादारी की शपथ' कहा है। इस शपथ का संबंध अनंतता से है:

मैंने अपने मुर्शिद से, नाम की दीक्षा देनेवाले से, कुछ ऐसा सुना, जिसे मैं कभी नहीं भूलूँगा: "यह मित्रता, यह नाता जो दो व्यक्तियों के बीच नाम की दीक्षा द्वारा जुड़ता है, कुछ ऐसा है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता; कुछ ऐसा है जिसे अलग या जुदा नहीं किया जा सकता; कुछ ऐसा है जिसकी तुलना दुनिया की किसी भी चीज़ से नहीं की जा सकती; इसका संबंध अनंतता से है।"

शेख़ फ़रीद: महान सूफ़ी फ़क़ीर

इसी पुस्तक में बताया गया है कि अनौपचारिक रूप से, सूफ़ी नाम की दीक्षा को 'शेख़ का हाथ पकड़ना' कहते हैं। यह प्रतीक प्रेमपूर्ण संबंध की ओर संकेत करता है जो नाम की दीक्षा के समय मज़बूत होता है: "गुरु शिष्य की सहायता और सहारे के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाता है; शिष्य उनके प्रेमपूर्ण संरक्षण को स्वीकार करने के लिए उनका हाथ थाम लेता है।"

हमारे पास भी एक ऐसी अद्भुत और शाश्वत मित्रता है: नामदान के समय सतगुरु और हमारे बीच ली गई वफ़ादारी की शपथ। एक ऐसी शपथ जिसे मौत भी नहीं तोड़ सकती जो अन्य सभी रिश्तों को तोड़ देती है। शायद, समय-समय पर, हमें शिष्यों के रूप में अपनी भूमिका का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता हो, क्योंकि उनका हाथ थामने का मतलब है कि जिस रूहानी अभ्यास को समय देने की ज़िम्मेदारी हमने ली है, हम उसे पूरा करेंगे। जब हम उनका हाथ थामते हैं, तब वह हमारा रूहानी मार्ग रोशन कर देते हैं। हमें चाहिए कि हम दृढ़ लगन और सच्चे हृदय से उस मार्ग पर चलें।

उनकी मित्रता, मार्गदर्शन और प्रेम के फलस्वरूप, एक दिन हमारी आत्मा वापस उस असीम परमात्मा में समा जाएगी और हमें परम आनंद का अनुभव होगा। अंततः हमारे लिए उनका प्रेम ही हमारी आत्मा को इस रचना से मुक्त करके वापस निज-घर ले जाएगा, और हमारा युगों-युगों का यह भ्रम समाप्त हो जाएगा कि हम कभी परमात्मा से अलग थे।

डॉ. जूलियन जॉनसन अपनी पुस्तक *अध्यात्म मार्ग* में लिखते हैं: "युगों-युगों से सतगुरु हर उपग्रह पर जहाँ मनुष्य का वास है, प्रकाश के संदेशवाहक रहे हैं। जब तक यह सृष्टि है वे उन सभी जीवों के मित्र और मुक्तिदाता रहेंगे जो प्रकाश तक पहुँचने के लिये संघर्ष कर रहे हैं।"

कौन ऐसी मित्रता के बारे में समझ सकता है?

हंस का अंतिम गीत

सतगुरु अकसर परमात्मा के साथ रिश्ता जोड़ने का महत्त्व समझाते हैं। आम तौर पर कोई भी संबंध दो लोगों के बीच में होता है। परमात्मा से प्रेम के संबंध में वे दो लोग प्रियतम और प्रेमी होंगे। शुरू में हमारा नज़रिया यह होता है कि परमात्मा प्रियतम है और हम सब उसके प्रेमी हैं। इस नज़रिए से हम उस प्रियतम के साथ अपने प्रेम की शुरुआत करते हैं, पहले देहधारी सतगुरु के ज़रिए और फिर शब्द-गुरु द्वारा। अब प्रश्न यह उठता है कि सच्चा प्रेमी कौन है और सच्चा प्रियतम कौन है?

जब मन त्रिकुटी, अपने स्रोत में समा जाता है, तब मन के चंगुल से आज़ाद हुई आत्मा को यह एहसास होता है कि प्रियतम और प्रेमी वास्तव में एक ही हैं। परमात्मा-रूपी प्रियतम ने जिज्ञासु के मन में प्रेम का बीज बोया जिसके फलस्वरूप वह यह सोचने लगा कि वह प्रेमी है। उस परमात्मा के बिना न तो प्रेम होगा, न ही प्रेमी और न ही प्रियतम।

महाराज चरन सिंह जी अकसर फ़रमाया करते थे कि परमात्मा अपने आप को हमारे ज़रिये पूजता है। शायद शुरू में हमें यह बात कम या बिल्कुल भी समझ में न आए, पर जब आत्मा अपनी अलग पहचान खोकर परमात्मा में समा जाती है, तब वह अनुभव करती है कि प्रेमी और प्रियतम एक ही हैं। परमात्मा आत्मा से अपनी भक्ति करवाता है; इसी लिए वह ख़ुद ही प्रेमी है और ख़ुद ही प्रियतम।

एक होने के नाते प्रेमी और प्रियतम दोनों का स्वभाव भी एक-सा ही होना चाहिए—प्रेम करनेवाला। परमात्मा प्रेम का रूप है, इसलिए वह केवल प्रेम ही करता है। दुविधा यह है कि इस रहस्य में जिज्ञासु की भूमिका को कैसे पहचाना जाए। अगर परमात्मा हमारे ज़रिए अपनी भक्ति करता है, तो इसका अर्थ है कि हम केवल ज़रिया हैं। हम इस प्रेम को स्वतंत्र रूप से प्रवाहित भी होने दे सकते हैं और इस प्रेम में रुकावट भी बन सकते हैं।

जिज्ञासु का कर्त्तव्य है कि वह परमात्मा के साथ सहयोग करे और इस प्रेम को प्रवाहित होने दे। चूँकि जिज्ञासु आत्मा, मन और शरीर तीनों का मेल है, तो मन और शरीर इस सहयोग में रुकावट कैसे बनते हैं?

हमारे शरीर में कोलेस्टेरॉल या धमनियों में जमा प्लाक हमारी धमनियों को अवरुद्ध और रक्त-प्रवाह को प्रतिबंधित कर सकता है। इसी तरह, मन भी प्रेम के प्रवाह को रोकने के लिए इंद्रियों, इच्छाओं और वासनाओं का इस्तेमाल करके बहुत बड़ी रुकावट पैदा करता है। प्रेम बिना किसी रुकावट के प्रवाहित हो सके, इसके लिए मन को तीसरे तिल पर एकाग्र करना पड़ता है, ऐसा करने पर आत्मा की धाराएँ कुछ समय के लिए शरीर से सिमट जाती हैं। आत्मा की धाराओं का तीसरे तिल पर सिमटना मृत्यु की तरह है और इसे 'जीते-जी मरने' की अवस्था कहा जाता है। आत्मा की धाराओं को तीसरे तिल पर समेटना हमारे लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

हम अपने सतगुरु को सहयोग तभी दे सकते हैं अगर हम मन, इंद्रियों और वासनाओं द्वारा इकट्ठा किए 'प्लाक' को जमा न होने दें और प्रेम बिना किसी रुकावट के प्रवाहित हो सके। इस कार्य को पूरा करने का सबसे आसान तरीक़ा अपने सतगुरु के हुक्म का पालन करना है और सच्चे दिल से लगन के साथ भजन-सिमरन करते हुए अपने ध्यान को तीसरे तिल पर एकाग्र करना है।

सतगुरु जानते हैं कि उनके उपदेश को समझना बहुत ही आसान है, परंतु उसे करनी में लाना उतना आसान नहीं है। महाराज जी के वचन हैं:

> *संतों की शिक्षा बहुत आसान है, लेकिन उस पर चलना बहुत मुश्किल है। यह मन के साथ लगातार चलनेवाली लड़ाई है; हमें अपनी ज़िंदगी का पूरा तरीक़ा ही बदलना पड़ता है, जीवन के प्रति अपना सारा दृष्टिकोण ही बदलना पड़ता है। संतमत पर चलने के लिए आमूल परिवर्तन की, काया-कल्प की ज़रूरत है और यह आसान नहीं है। इसके लिए ज़िंदगी में काफ़ी कुर्बानी करनी पड़ती है।*
>
> जीवत मरिए भवजल तरिए

बहुत-से धर्मों में परमात्मा को सर्वव्यापक, सर्वज्ञाता, सृजनात्मक शक्ति माना गया है। इस शक्ति को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है: होली घोस्ट, वर्ड, लोगॉस, नाम, शब्द इत्यादि। संतमत में इस 'शब्द' रूपी शक्ति के बारे में जागरूक होने को बहुत महत्त्व दिया गया है। इस सृजनात्मक शक्ति के बिना किसी चीज़ का अस्तित्व संभव नहीं है। सृष्टि की रचना और सँभाल करनेवाली यह शक्ति, सृष्टि में चेतना का संचार करती है और हमारी आत्मा इसी 'शब्द' की अंश है।

किसी देहधारी सतगुरु की सहायता से ही शब्दरूपी इस शक्ति का अनुभव किया जा सकता है। यह कोई नया सिद्धांत नहीं है। सृष्टि में हमेशा से ही देहधारी सतगुरु, मुक्तिदाता, पैग़ंबर, संत-महात्मा और पूर्ण साधु मौजूद रहे हैं, जिनका उपदेश ही सभी धर्मों की बुनियाद है। केवल मौजूदा सतगुरु, बाहरी कर्मकाण्ड में उलझाए बिना, हमें अंतर में शब्द का अनुभव करने की सही युक्ति समझा सकते हैं। सतगुरु से नामदान प्राप्त हो जाने पर हमें चाहिए कि हम अपने उसूलों से कोई भी समझौता किए बिना, लगनपूर्वक उनके उपदेश के अनुसार चलें।

हालाँकि सतगुरु का उपदेश सर्वव्यापक है, परंतु इसके दो पहलुओं पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है—आशावादी नज़रिया और परमात्मा की रज़ा में रहना। ख़ुशहाल और संतुष्ट जीवन जीने के लिए नज़रिए का आशावादी होना ज़रूरी है। जीवनरूपी इस नाटक में आशावादी नज़रिया कैसे अपनाया जा सकता है? यह हमारे नज़रिए पर निर्भर है। परमात्मा का आभार मानने से हमारा रवैया बेहतर हो जाएगा। महाराज चरन सिंह जी, पुस्तक *अनमोल ख़ज़ाना* में फ़रमाते हैं:

> *महाराज जी हमेशा कहते हैं कि मालिक हमें जो कुछ भी दे उसके लिए हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए। हमें चाहिए कि ज़िंदगी के हर क़दम पर मालिक का आभार मानें और हमारे साथ जो कुछ भी हो रहा हो, वह चाहे हमें अच्छा मालूम दे या बुरा, उसे ख़ुशी से स्वीकार करना चाहिए। हम नहीं जानते कि जो दिखने में बुरा मालूम देता है*

उसमें क्या रूहानी भलाई छिपी हुई है, और जो अच्छा दिखाई देता है उसमें क्या बुराई। हमें पूरी कोशिश करनी चाहिए कि मालिक की रज़ा में राज़ी रहते हुए जो कुछ भी वह दे उसके लिए शुक्रगुज़ार हों।

आशावादी नज़रिया स्पष्ट सोच का परिणाम है। मगर जब हमारा मन चिंता, विश्लेषण और ज़रूरत से ज़्यादा सोचता है तो यह अकसर निराशावादी सोच और दुविधा का शिकार हो जाता है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हुए, सतगुरु की रज़ा में राज़ी रहने से तथा इस बात को स्वीकार करने से कि कर्मों के क़ानून और भाग्य को बदला नहीं जा सकता, हमारा दृष्टिकोण आशावादी बनता है। आशावादी दृष्टिकोण से इस सत्य को स्वीकार करने में सहायता मिलती है कि हर चीज़, नियत समय पर, हमारे भाग्य के अनुसार ही होती है, विरोध करने से जीवन में घटनेवाली घटनाओं को बदला नहीं जा सकता।

आख़िरकार स्वीकृति जीवन के प्रति सबसे उत्तम नज़रिया है। अपने भाग्य को स्वीकार करने और इसमें किसी परिवर्तन की चाह न रखने की मनोवृत्ति से हमें संतोष और सुख प्राप्त होता है। जब हम यह मान लेते हैं कि सब कुछ परमात्मा की रज़ा से हो रहा है, तो हम कुछ भी स्वीकार कर सकते हैं। हमें, शुरू-शुरू में, परमात्मा की रज़ा में रहना असंभव लगता है, मगर जैसे-जैसे हमारी सोच स्पष्ट होती जाती है, हमें महसूस होने लगता है कि परमात्मा की रज़ा में रहना ही जीवन जीने का एकमात्र तरीक़ा है। जितनी जल्दी हमें इस बात का एहसास हो जाएगा कि परमात्मा की इच्छा ही सर्वोपरि है, उतनी जल्दी हम अपने भाग्य को स्वीकार करना सीख जाएँगे।

दिव्य प्रकाश पुस्तक में, महाराज जी फ़रमाते हैं:

हमें सब कुछ सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिये और जिस हाल में भी वह हमें रखना चाहे, उसी में रहना चाहिये। हमारी इच्छाएँ और कामनाएँ हमारा मन उत्पन्न करता है और उन्हें हम अपनी भक्ति के बदले में, परमात्मा से पूरा करवाना चाहते हैं। यह ग़लत विचारधारा है

और इससे बचना चाहिये। हमें तो मालिक की इच्छा में, उसके भाणे में रहने की कोशिश करनी चाहिये।

केवल भजन-सिमरन द्वारा ही हम उस परमात्मा की रज़ा में राज़ी रह सकते हैं। पुस्तक संत संवाद, भाग 2 में महाराज जी फ़रमाते हैं:

प्रार्थना में, हम परमात्मा से बात करते हैं। हम अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिये उससे कुछ उम्मीद करते हैं। भजन-सिमरन में हम परमात्मा को सुनते हैं। हम अपने आप को उसकी मौज पर छोड़ देते हैं। रूहानी अभ्यास में आप परमात्मा की आवाज़ को सुनते हैं और आप अपनी मरज़ी को उसके सुपुर्द कर देते हैं। आप उसकी रज़ा में रहते हैं।

भजन-सिमरन परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहने का ज़रिया है। प्रत्येक कर्म का कोई न कोई परिणाम अवश्य होता है और भजन-सिमरन वह करनी है जो हमें उत्तम फल प्रदान करती है।

करोड़ों बार अलग-अलग योनियों में जन्म लेने के बाद, परमात्मा की दया से अब हमें मनुष्य-जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यह अपने जीवन को हंस गीत बनाने का—अंतिम बार गीत गाने का—अनमोल अवसर है। लोक कथा के अनुसार, आम तौर पर हंस मौन रहते हैं परंतु मृत्यु से कुछ क्षण पहले वे सुंदर गीत गाते हैं। अत: "हंस गीत" अंत से पहले दिए गए अंतिम संकेत, प्रयास या अभिनय का एक रूपक है।

हमारे सतगुरु जो भी करते हैं, उसमें अपना सर्वश्रेष्ठ देते हैं। यदि हमारे अंदर फिर से जन्म लेने की इच्छा नहीं है, तो हमारा यह जीवन हमारे प्यारे सतगुरु के लिए हमारा अंतिम गीत होना चाहिए। हमें इस अंतिम गीत के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ देना चाहिए। यह सतगुरु के प्रति आभार व्यक्त करने का प्रयास मात्र है, जिनकी दया-मेहर से हम वह अद्‌भुत ख़ज़ाना प्राप्त करने जा रहे हैं, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

दिव्य संबंध

हम इस रूहानी मार्ग पर खिंचे चले आए और सतगुरु ने हमें नामदान की बख़्शिश कर दी, मगर इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि हमने परमात्मा को पा लिया है। प्रभुप्राप्ति के लिए अभी हमारा मार्गदर्शन किया जाएगा। संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि यह एक ऐसा सफ़र है, जो हमारे निज-घर और हमारे परमपिता के पास पहुँचकर ही समाप्त होगा। हम बहुत भाग्यशाली हैं कि हमें ऐसे पूर्ण सतगुरु की शरण प्राप्त हुई है जो इस मायावी संसार में सभी कठिनाइयों का सामना करने और बाधाओं को पार करने के लिए हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। सतगुरु अपने प्रत्येक शिष्य को निज घर वापस पहुँचाने के लिए वचनबद्ध हैं।

परमात्मा को जानने के लिए हमें उपयुक्त रूहानी अभ्यास करने की आवश्यकता है। हमारी सीमित समझ और सत्य के आधे-अधूरे ज्ञान के बावजूद, परमात्मा को जानने की हमारी इच्छा ही हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। इसी इच्छा के कारण हम अपने इस रूहानी सफ़र को जारी रखने के लिए विवश हो जाते हैं।

ऐडवेंचर ऑफ़ फ़ेथ नामक पुस्तक की लेखिका श्रद्धा लायर्ज़ ने परमात्मा की खोज की अपनी कहानी का वर्णन किया है। इस खोज में उसके जीवन का बहुत ज़्यादा समय लग गया। जब उसकी मुलाक़ात महाराज चरन सिंह जी से हुई और उनसे नामदान की बख़्शिश हुई, तब उसकी यह खोज पूरी हुई।

लेखिका की कहानी उस समय शुरू होती है जब तेरह साल की उम्र में उसे पहली बार गूढ़ आध्यात्मिक अनुभव हुआ। रेलगाड़ी द्वारा स्कूल से घर लौटते समय, वह ऊपर से आनेवाली एक अदृश्य रोशनी की अनुभूति से मोहित हो गई। इस रोशनी में से, उसने अपने अंतर में एक स्पष्ट और अलग प्रकार की आवाज़ सुनी, जो कह रही थी: "अपने हृदय में प्रेम की भावना को बनाए रखो, क्योंकि पता नहीं कब परमात्मा तुम से तुम्हारा संपूर्ण प्रेम-भरा हृदय माँग ले।" यह अनुभव इतना गहरा था कि इसने लेखिका के

जीवन को पूरी तरह से बदल दिया। वह लिखती है: "यह मेरे विश्वास के रोमांच का प्रारम्भ था।"

लेखिका को इस बात में कोई संदेह नहीं था कि परमात्मा ने ही उससे बात की थी। उसने इस आवाज़ को "आग्रहपूर्ण और साथ ही अत्यंत कोमल और प्रेम से परिपूर्ण" बताया। जिस दिशा में जाने के लिए उसका मार्गदर्शन किया गया था वह स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक खोज की यात्रा थी। उसके प्रभाव का वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया:

> *उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया था और इस प्रकार वे मेरे निजी परमात्मा बन गए थे, बिना कोई प्रश्न किये और बिना किसी शर्त के मैंने अपना जीवन उन्हें समर्पित कर दिया था, यह जाने बिना कि इसके परिणाम क्या होंगे।*
>
> ऐडवेंचर ऑफ़ फ़ेथ

संत-सतगुरु इस बात की पुष्टि करते हैं कि हम सभी रूहानी जीव हैं और वास्तव में, परमात्मा का ही रूप हैं। सच्चे दिल से किए गए रूहानी अभ्यास द्वारा जैसे-जैसे हम इस मायामय जगत से बेलाग होंगे, हम इस दिव्य संबंध का अनुभव करना शुरू कर देंगे। इस बात की पुष्टि फ़्रॉम सेल्फ़ टू शब्द पुस्तक में की गई है:

> *आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा, धीरे-धीरे, हम उन सभी चीज़ों से बेलाग होना शुरू हो जाएँगे, जो पहले हमें मज़बूती से जकड़े हुए थीं। इससे हमें यह यक़ीन हो जाएगा कि हम सही रास्ते पर हैं और शब्द के साथ जुड़ने के सच्चे मार्ग पर हैं। जैसे-जैसे हमें अपने वास्तविक स्वरूप—शब्द के साथ अपनी एकता का एहसास होगा, हम इस संसार से प्राप्त होनेवाली शांति और ख़ुशी से कहीं अधिक शांति और सुख का अनुभव करेंगे।*

संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि भजन-सिमरन, विशेष तौर पर नामदान के दौरान मिलनेवाले पाँच पवित्र शब्दों के सिमरन द्वारा हम संसार से विरक्त हो जाते हैं। जब हम संसार के बारे में सोचने के बजाय सिमरन करते रहने की आदत डाल लेते हैं, तब हम अधिक शांति महसूस करते हैं। सिमरन हमारे ख़याल को दुनिया की ओर से मोड़ता है। संसार के इस रंगमंच पर हम जिस किरदार को निभा रहे हैं, सिमरन उस किरदार और हमारे आस-पास होनेवाली घटनाओं से विरक्त होने में हमारी मदद करता है।

अगर हम सिमरन करने की आदत डाल लेते हैं तो धीरे-धीरे हमारा मन अधिक शांत और निर्मल होता जाएगा और ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेगा जिसमें संसार का आकर्षण कम होने लगता है। सतगुरु यही चाहते हैं कि अगर हम परमात्मा से मिलाप करना चाहते हैं और मन को वश में करना चाहते हैं तो सुरत को जाग्रत करके ऐसी अवस्था प्राप्त कर लें।

हमारे लिए अपने आप को यह याद दिलाते रहना आवश्यक है कि एकाग्रता से किए सिमरन द्वारा एवं वर्तमान पल में मौजूद रहने से, हम अपने अनियंत्रित मन को वश में कर सकते हैं। मन को स्थिर करना संभवतः हमारा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है और हम जब भी भजन-सिमरन के लिए बैठें, मन को स्थिर करना ज़रूरी है। मन स्वभाव से बहुत चंचल है; इसे लगातार व्यस्त रखना ज़रूरी है। मन को स्थिर करने का, सिमरन से बढ़कर दूसरा कोई कारगर तरीक़ा नहीं है।

हो सकता है कि संत मत के मारग पर हम अध्यात्म के जिज्ञासु हों, लेकिन फिर भी हमें इस मायामय मंच पर अपनी भूमिकाएँ निभानी होंगी। हमारा भाग्य तय हो चुका है। हमें अपनी तरफ़ से अपनी ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह से निभाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। साथ ही, हमें संसाररूपी भ्रमजाल में फँसने से बचना चाहिए। इस सृष्टि में कुछ भी स्थायी नहीं है—सुख सदा नहीं रहता, संतुष्टि थोड़े समय की है, सुरक्षा स्थायी नहीं है और रिश्ते भी सदा साथ नहीं निभाते।

यह सृष्टि हमें बंदी बनाने के लिए रची गई है। इस सृष्टि में हमें अपने आध्यात्मिक लक्ष्य से भटकाने की हर तरह से कोशिश की जाती है। हमारा सच्चा निज-घर सचखंड है, जहाँ परमात्मा रहता है। इसलिए हमें अपने घर वापस लौटने की कोशिश करनी चाहिए। हमारी यह कोशिश पूरी तरह से हमारे भजन-सिमरन और हमारे सतगुरु की दया-मेहर पर निर्भर करती है।

इस संसार में हमें जितना भी समय ज़िंदगी जीने के लिए मिला है, उस समय का उपयोग अपने सांसारिक कर्तव्यों को सच्चे दिल से पूरा करने के लिए करना चाहिए। लेकिन ऐसा करते हुए हमें अपना ध्यान प्रभु की ओर लगाए रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस संसार में अपनी प्रारब्ध को भोगते हुए हमें अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को नहीं भूलना चाहिए।

निरंतर सिमरन हमारे मन को दुनिया में उलझने से बचाने का अचूक उपाय है। सचेत होकर, पूर्ण एकाग्रता के साथ किए सिमरन द्वारा हमारा मन इतना शांत हो जाएगा कि हम सतगुरु द्वारा बताई 'जीते-जी मरने' की अवस्था को प्राप्त करने के लायक़ बन जाएँगे।

अपनी पुस्तक जीवत मरिए भवजल तरिए में महाराज चरन सिंह जी फ़रमाते हैं:

> *सतगुरु की दया-मेहर से हम अपने सांसारिक बंधनों को काट देते हैं और संसार की मुसीबतों और दुःखों को भूल जाते हैं। इस रूहानी अभ्यास के द्वारा हम रोज़ मरते हैं। हम ज़िंदा रहने के लिए रोज़ मरते हैं, ताकि हम अपने सच्चे घर के स्थायी आनंद को प्राप्त करके सदा के लिए जीवित हो जायें, अमर हो जायें।*

संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि रूहानी यात्रा के दौरान अपने उद्देश्य को ध्यान में रखना कितना महत्त्वपूर्ण है। दुनियारूपी मेला रंग-तमाशों और प्रलोभनों से भरपूर है। हम इस मेले में भटक जाने का ख़तरा मोल नहीं ले सकते। हमें पता होना चाहिए कि हमें अपना ध्यान किस तरफ़ लगाना है

क्योंकि सच्चे दिल से, एकाग्रचित्त होकर किए गए भजन-सिमरन द्वारा ही परमात्मा का अनुभव हो सकता है।

सन्त संदेश पुस्तक में गुरु नानक देव जी के वचनों का हवाला दिया गया है, आप फ़रमाते हैं: "*निरन्तर सिमरन मालिक के महल पर चढ़ने की सीढ़ी है। यह सिमरन एक अनमोल साधन है और परमात्मा की दया से किसी श्रेष्ठ भाग्य वाले बिरले मनुष्य को सतगुरु से प्राप्त होता है।*"

हम सब के मन में किसी न किसी रूप में दिव्य संबंध जोड़ने की चाहत होती है, जिससे हम अधिक से अधिक समय परमात्मा की हुज़ूरी में बिता सकें। अवेयरनेस ऑफ़ द डिवाइन पुस्तक में से लिया गया निम्नलिखित उद्धरण हमारे समक्ष इसका प्रभावपूर्ण सार प्रस्तुत करता है:

> *अंततः, यह सब बहुत सरल है, और यह सब पहले भी कहा जा चुका है। हम रूहानी जीव हैं जो परमात्मारूपी दिव्य-सत्ता के समुद्र में रहते हैं। दुनिया की सभी समस्याओं, चाहे वे व्यक्तिगत हों या अन्य, का एक ही कारण है—हमारा भूलना या हमें इस वास्तविकता का ज्ञान न होना कि वह परमात्मा सृष्टि के कण-कण में मौजूद है। जीवन का अर्थ और उद्देश्य इसी रहस्य में समाया हुआ है और आत्मबोध का अर्थ है इस बात को जानना कि हम वास्तव में कौन और क्या हैं।*

प्रभु बिराजे तन-मन्दिर में

ब्रह्माण्ड अनन्त समाए प्रभु में,
जीव-रूप प्रभु मेरे अन्दर।
प्रभु बिराजे तन-मन्दिर में,
खोजने जाएँ क्यों और मन्दिर॥

यर्थाथ स्वरूप प्रभु का कैसा—यह॥
जानना हो तो जाओ तन-मन्दिर।
यह अनुभव तो तब ही होगा
जब तुम खोज करोगे अन्दर॥

विश्व-रूप प्रभु, उसकी कोई
ना शाखा है, ना ही मूल है।
जीव-रूप उस प्रभु की कोई
ना तो जाति है, ना ही कुल है॥

प्रभु नित्य है, और अगम्य है,
ना मन्दिर, ना महल में रहता।
समय नहीं, ना अभाव समय का,
प्रभु अगम्य जहाँ है रहता॥

वहाँ न भावना, ना ही भक्ति,
ना है मोक्ष और ना ही मुक्ति।
वहाँ न दिन चढ़ता-ढलता है,
ना आती-जाती है रात्रि॥

मेरे सतगुरु बाबा जी ने ही यह सारा
अनुभव मुझे प्रदान किया है।
तुका, उन्होंने धाम में अपने
वास स्थायी मुझे दिया है॥

अनंत ब्रह्मांडें जयाचे उदरीं
छन्दबद्ध गाथा 58

दृष्टिकोण बनाम वास्तविकता

हर चीज़ के बारे में हमारा दृष्टिकोण हमारी सोच पर आधारित होता है। हमारे दृष्टिकोण पर हमारे सीमित ज्ञान और सोचे-समझे बिना पहले से बने हमारे विचारों का प्रभाव होता है। इसलिए, चीज़ों को उनके निष्पक्ष रूप में समझ पाना मुश्किल होता है।

पहले से बने हमारे निजी विचार वास्तविकता को धुँधला कर देते हैं और फिर उस धुँधली वास्तविकता को हम सत्य के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। हमारी धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ भी बिलकुल ऐसा ही होता है। हालाँकि, सच्चे संत-महात्मा स्वयं सत्य का साक्षात् अनुभव कर चुके होते हैं और वे बिना भेदभाव किए उन अनुभवों को हमारे साथ साँझा करते हैं। वे हमें आध्यात्मिकता के बुनियादी सत्य के बारे में समझाते हैं; साथ ही यह भी सिखाते हैं कि अपने वास्तविक स्वरूप—आत्मा का अनुभव कैसे किया जाता है।

एक अन्य आध्यात्मिक सत्य या वास्तविकता यह है कि हर कर्म का फल होता है। हर प्राकृतिक नियम की तरह यह नियम सर्वव्यापक है। कर्म और फल का यह नियम बड़ी सूक्ष्मता और बारीक़ी से लागू होता है। कोई भी व्यक्ति गुरुत्वाकर्षण, भौतिकी और गति जैसे विज्ञान के प्राकृतिक नियमों से अछूता नहीं रह सकता, वैसे ही कोई भी व्यक्ति कर्म-फल के क़ुदरती क़ानून से बच नहीं सकता।

इसे कर्म-सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। बाइबल के कथन अनुसार, 'जैसा बीज बोओगे, वैसी फसल काटोगे।' जब हम अच्छे कर्म करते हैं, तो हमें अच्छा फल मिलता है। बुरे कर्म करने पर भी हमें उन्हीं के अनुसार बुरा फल मिलता है। यह सिद्धांत न्यायपूर्ण और निष्पक्ष है। इस सिद्धांत के अनुसार बिना किसी पक्षपात या भेदभाव के सभी को पूरा न्याय मिलता है।

एक और आध्यात्मिक सत्य यह है कि हमारा अस्तित्व हमारे जन्म से शुरू होकर हमारी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हो जाता। यह शरीर साधन

मात्र है, जो इस अनंत संसार में हमें निश्चित समय के लिए मिला है। महाराज जगत सिंह जी फ़रमाते हैं:

> *यह जीवन अस्तित्व की अनन्त शृंखला की एक कड़ी है। शरीर नष्ट हो जाता है, पर आत्मा सदा रहती है। वह अमर है। वह मालिक से अपने दुःखपूर्ण वियोग और संसार में व्यर्थ भटकने की अवस्था से निकलकर परमात्मा के धाम में वापस आनन्दपूर्वक लौटने का मार्ग अपनाती है।*
>
> *आत्म ज्ञान*

महाराज जगत सिंह जी के इन वचनों से हमें एक अन्य प्राकृतिक नियम—पुनर्जन्म के सिद्धांत के बारे में पता चलता है। इस सिद्धांत के अनुसार आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है, ताकि अपने अनगिनत पिछले जन्मों के कर्मों का फल भोग सके।

कर्म और पुनर्जन्म दोनों सिद्धांत पूर्ण रूप से लागू होते हैं, लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि इनके परिणाम तुरंत प्राप्त हो जाएँ और यह भी ज़रूरी नहीं है कि ये परिणाम इसी जीवन में प्राप्त हो जाएँ। चूँकि ये परिणाम अगले जन्मों में मिलते हैं, इसलिए किसी कर्म को उसके परिणाम के साथ प्रत्यक्ष रूप से जोड़ देना भी संभव नहीं है।

यह सब हमें निरंतर इस सृष्टि में फँसाए रखने के लिए बिछाया गया ख़तरनाक जाल है। चूंकि हम अपने कर्मों के परिणाम के बारे में नहीं जानते, इसलिए हम निरंतर कर्म करते जाते हैं। कर्मों के परिणाम की परवाह किए बिना, अज्ञानतावश हम कर्मों का भारी बोझ इकट्ठा करते जाते हैं, जिसे भविष्य में किसी न किसी जन्म में हमें चुकाना पड़ेगा।

अधिकांश धर्मों और आध्यात्मिक मार्गों में एक नैतिक संहिता होती है, जिनके अनुसार जिज्ञासु को अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। ये संहिताएँ सामान्यत: बाइबल के सिद्धांत 'जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे' पर आधारित होती हैं। मगर इसके बावजूद कई लोग मानते हैं कि हम केवल मनुष्यों द्वारा

बनाए गए क़ानूनों के अधीन हैं और इन्हीं के मुताबिक़ हमें परखा जाता है। कोई भी व्यक्ति जब कोई ग़ैरक़ानूनी कार्य करता है, तो वह कभी भी ख़ुद को दोषी नहीं मानता। कभी-कभी, किसी क़ानूनी ख़ामी के कारण, वह क़ानून से बच जाता है और मान लेता है कि वह अपने कर्मों का परिणाम भुगतने से बच गया है। लेकिन कर्मफल के इस क़ुदरती क़ानून से कोई भी बच नहीं सकता।

महाराज जगत सिंह जी समझाते हैं:

> *कर्मों का क़ानून सब पर लागू होता है। यह सृष्टि का अटल नियम है। प्रत्येक जीव को अपने बोए बीज की फ़सल काटनी पड़ती है, अपने किए कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। कर्मों की गति को कोई नहीं टाल सकता।*
>
> *आत्म ज्ञान*

यह नियम बहुत अहम है क्योंकि कर्मों का जो कर्ज़ हम इकट्ठा करते हैं, वह हमें अनंत काल तक इस सृष्टि से बाँधकर रखता है। इस सृष्टि से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, हमें कर्मों की इस रुकावट को दूर करना होगा। जो फल हम पाना चाहते हैं, हमें उसके अनुसार ही कर्म करने चाहिएँ। हमें व्यर्थ ही नए कर्मों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए और इकट्ठा हो चुके कर्मों के कर्ज़ के भुगतान की कोशिश करनी चाहिए।

पूर्ण संत-महात्मा स्वयं सच्ची मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। वे ही हमें सच्ची मुक्ति को प्राप्त करने की युक्ति समझा सकते हैं। वे हमें ऐसी जीवन शैली बताते हैं जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होती है। वे हमें जीवन के हर पहलू के बारे में उपदेश देते हैं; इसमें हमारा आहार और नैतिक आचरण भी शामिल है। वे हमें यह भी समझाते हैं कि हम किस प्रकार कर्मों का बोझ इकट्ठा करते हैं। हमारा आहार कैसा होना चाहिए इस विषय में संतमत के साहित्य में विस्तारपूर्वक बताया गया है और इसके पीछे की ठोस वजह भी बताई गई है। हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए और हमें इस संसार में किस तरह रहना चाहिए, इस बारे में भी आध्यात्मिक साहित्य हमारा मार्गदर्शन करता है।

नामदान प्राप्त कर चुकी एक सत्संगी महिला को उसके पत्र का उत्तर देते हुए महाराज चरन सिंह जी ने *अनमोल ख़ज़ाना* पुस्तक में फ़रमाया:

> *जब तुमने अपने खान-पान में मनमानी करनी शुरू कर दी और संतमत के सिद्धांतों के पालन में ढील देनी शुरू कर दी तो मुझे बेहद दुःख हुआ, क्योंकि इसके परिणाम मुझे मालूम थे; लेकिन मैंने इस बारे में तुमसे कुछ नहीं कहा क्योंकि मैं तुम्हारे दिल को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था।...पिछले तीन-चार महीने से तुम ज़िद्द कर रही थीं कि मैं तुम्हें बताऊँ कि तुम्हें इतनी तकलीफ़ क्यों भुगतनी पड़ रही है, हालाँकि तुम अपने अंदर ही इसके कारण को पूरी तरह जानती थीं।*

मनुष्य ग़लतियों का पुतला है। सतगुरु हमें समझाते हैं कि हमें पीछे हो चुकी ग़लतियों पर ध्यान नहीं देना है और संतमत के सिद्धांतों के अनुसार ज़िंदगी गुज़ारनी है। ऐसे में केवल हमारे संचित कर्मों का भुगतान करना ही बाक़ी रह जाएगा।

महाराज जी हमें हमारी स्थिति से अवगत करवाने के लिए एक बिजली के बल्ब का उदाहरण दिया करते थे। जब एक जलते हुए बिजली के बल्ब के चारों ओर कई काले कपड़े लपेट दिए जाते हैं, तो उसकी रोशनी, चाहे कितनी भी तेज़ क्यों न हो, धुँधली पड़ जाएगी। अगर हम कपड़े की एक परत हटा दें तो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इसी तरह, अगर हम दूसरी और तीसरी परत हटा दें, तो भी बहुत कम फ़र्क़ पड़ता है। तब, शायद हम रोशनी की तलाश करना ही छोड़ दें, लेकिन अगर हम ऐसा करते हैं, तो रोशनी हमेशा के लिए धुँधली रहेगी।

इसी प्रकार, हमारा रोज़ाना का भजन-सिमरन हमारे संचित कर्मों को समाप्त करने के लिए हमारी तरफ़ से किया गया प्रयास है। अगर हम हिम्मत और विश्वास के साथ दिए हुए हुक्म का पालन करते हुए धीरे-धीरे परतें हटाते रहें, तब चाहे हमें अपना यह प्रयास कितना भी कठिन और निरर्थक क्यों न लगे, हमारी उन्नति होगी। आख़िरकार जब सभी परतें हट जाएँगी, तो हम उस रोशनी की पूर्ण चमक का अनुभव कर पाएँगे।

हम सबकी चेतना या आत्मा, बिजली के बल्ब की तरह है। यह हमें दिखाई नहीं देती क्योंकि यह कर्मों के बोझ तले दबी हुई है, काले कपड़े की परतों से लिपटे बिजली के बल्ब की तरह। जब हम इतनी बड़ी बाधा को दूर कर लेंगे, तो आत्मा फिर से प्रकाशमयी हो जाएगी और हमें अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान हो जाएगी।

आत्म-साक्षात्कार हमारी चेतना के स्तर को ऊँचा उठाने और सुरत को जाग्रत करने की प्रक्रिया है जिससे हमें यह बोध हो जाता है कि हम वास्तव में निर्मल आत्मा हैं। इस समय हमें इस बात का एहसास नहीं है क्योंकि हमारा ध्यान बाहर सारे संसार में फैला हुआ है। अपनी आत्मा की इस वास्तविकता का अनुभव करने के लिए, हमें अपने ध्यान को बाहरी स्थूल भौतिक जगत से हटाकर अपने अंतर में रूहानी जगत की ओर मोड़ना चाहिए।

सैद्धांतिक तौर पर यह सब समझना आसान है। हालाँकि जिन्होंने आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की कोशिश की है या आत्म-साक्षात्कार का प्रयास किया है, केवल वही जानते हैं कि इस लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन है। इसी कठिनाई के कारण इन सिद्धांतों को करनी में लाने की कोशिश धीमी पड़ जाती है।

हमें समझना चाहिए कि आध्यात्मिक मार्ग पर चलने और लक्ष्य को प्राप्त करने में अंतर होता है। इस मार्ग पर चलने के लिए ज़रूरी है कि हम एक ऐसी विशेष जीवन शैली अपनाएँ जिसे हम सभी अपना सकते हैं। लेकिन लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया लंबी है, इसमें अकसर कई दशक या यहाँ तक कि पूरा जीवन भी लग जाता है। इस वजह से हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, क्योंकि सतगुरु हमें विश्वास दिलाते हैं कि लक्ष्य का प्राप्त होना निश्चित है। हुक्म का पालन करते हुए, नियमपूर्वक भजन-सिमरन करने की कोशिश करना लक्ष्य तक पहुँचने का हमारा प्रयास है। ये प्रयास हमें अपने प्यारे सतगुरु के साथ प्रेम का दिव्य संबंध जोड़ने में मदद करते हैं।

सुख और दुःख

हम अकसर यह सुनते हैं कि सतगुरु हमारे लिए बहुत कुछ करते हैं, मगर बदले में वह हमसे बहुत कम उम्मीद रखते हैं। वह हमसे जो उम्मीदें करते हैं, उनमें से कुछ को मानना बहुत आसान है जैसे हम क्या खाते और पीते हैं। हालाँकि, वह हमसे एक ऐसी उम्मीद भी रखते हैं जिसे पूरा करना इतना आसान नहीं है: वह चाहते हैं कि हम सुख और दुःख में अंतर न करें; दोनों को समान भाव से स्वीकार करें।

हम अपने जीवन में सुखों को तो बड़ी ख़ुशी से स्वीकार कर लेते हैं। अगर हम संतमत के दृष्टिकोण से विचार करें तो दुःख देनेवाली चीज़ों को भी स्वीकार करना संभव हो जाएगा। आख़िरकार, हमारा मुख्य उद्देश्य तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर निज-घर वापस जाना है।

परम-पिता परमेश्वर की अपार दया-मेहर से ही हमें नामदान की बख़्शिश हुई है, क्योंकि उसे आत्माओं की तड़प का अहसास है। सतगुरु ने हमारे कर्मों के भुगतान की ज़िम्मेदारी ली है। वह समय-समय पर हमसे थोड़े-थोड़े कर्मों का भुगतान करवाते रहते हैं ताकि हम आसानी से यह भुगतान कर सकें। वह हमसे बहुत प्यार करते हैं और वह हमें अपना ही रूप बनाने में जुटे हुए हैं। सतगुरु जिस तरह चाहते हैं, वह हमें जीवन में उसी तरह आगे लेकर जाएँगे। जब हम परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहते हैं, तो जो भी होता है, हम उसे भी ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेते हैं।

प्रभात का प्रकाश पुस्तक में, महाराज सावन सिंह जी फ़रमाते हैं:

> *यह याद रखें कि जो कुछ बीत चुका है, बीत रहा है या आगे बीतेगा, वह सबकुछ परमात्मा की इच्छा के अनुसार है। सो हम चाहे किसी भी अवस्था से गुज़र रहे हों, हमें शान्त और सन्तुष्ट रहना चाहिये। अगर वह दुःख भेजता है तो हमें चाहिये कि उसे ख़ुशी से स्वीकार करें। अगर वह सुख भेजता है तो अपने आपको प्रभु के बच्चे समझ कर नम्रता के*

साथ उसे स्वीकार करना चाहिये। सो यह न सोचें कि जीवन फूलों की सेज नहीं है। इसे उसकी बख़्शिश समझ कर ख़ुश रहना चाहिये।

इनसान होने के नाते हमारे कर्मों का कर्ज़ दो प्रकार का है। हमारा प्रारब्ध हमारे मौजूदा कर्ज़ का भुगतान है। साथ ही साथ हम अपनी हर साँस और हर क़दम के साथ नए कर्मों को इकट्ठा करते जा रहे हैं। हमें अपने सभी कर्मों का हिसाब देना पड़ता है इसलिए कर्म करते समय हमें सावधान रहना चाहिए। परमात्मा की सहायता के बिना हमारे सभी कर्मों का कर्ज़ नहीं चुकाया जा सकता, मगर सतगुरु की मदद से यदि इस कर्ज़ को पूरी तरह चुकाया न जा सके तो भी कम ज़रूर किया जा सकता है।

प्रभात का प्रकाश पुस्तक में हुज़ूर बड़े महाराज जी फ़रमाते हैं:

जो कुछ भी अच्छा या बुरा हमारे साथ होता है, चाहे वह किसी व्यक्ति या वस्तु के ज़रिये हो, हमारे प्यारे प्रभु की रज़ा या इच्छा से होता है। सब लोग और सब वस्तुएँ उस मालिक के हाथ में कठपुतलियों के समान हैं। अगर आप पर कोई विपत्ति आये तो उसे परम पिता की दया-मेहर समझें।... हमारा सतगुरु चाहता है कि हम तकलीफ़ों को जल्दी-जल्दी भुगत कर उन कर्मों के बोझ से शीघ्र मुक्त हो जायें। कर्मों के कर्ज़ को इस प्रकार जल्दी चुकाने से—क्योंकि कर्ज़ तो वह है ही—तकलीफ़ की मात्रा कम हो जाती है। अगर हमें शुरू में मन-भर कर्ज़ उतारना था, तो अब हम किलो, दो किलो देकर ही छुटकारा पा लेते हैं।

सतगुरु हमारे लिए यह सब इसलिए करते हैं क्योंकि वे हमसे बहुत प्यार करते हैं, और उस प्यार के बदले में ही हम उनसे प्यार करना सीखते हैं। सतगुरु के लिए प्रेम होना ज़रूरी है क्योंकि अगर हम उनसे प्रेम करते हैं तो हम उनके हुक्म का पालन करना चाहेंगे और उन्हें ख़ुश करना चाहेंगे।

उनके प्रति हमारा यह प्रेम हमें सांसारिक मोह के बहुत-से बंधनों से आज़ाद कर देता है और सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने की हमारी इच्छा को भी कम, यहाँ तक कि समाप्त ही कर देता है।

हमें चेतावनी दी जाती है कि हमारी हर इच्छा पूरी की जाती है। इन्हीं इच्छाओं के कारण इनसान को एक के बाद दूसरा जन्म लेना पड़ता है। इस समय हमारा उद्देश्य आवागमन के चक्र से बाहर निकलना है। हमारी आत्माएँ इस आवागमन के कभी न ख़त्म होनेवाले चक्र से थक चुकी हैं; इसी लिए अब हमें वही करना चाहिए, जो हमारे सतगुरु चाहते हैं।

भले ही कई बार हमें भजन-सिमरन में ख़ुशी के बजाय निराशा का सामना करना पड़े, लेकिन फिर भी हमें भजन-सिमरन करना चाहिए। हमें समझाया जाता है कि हमारा भजन-सिमरन ही हमें इन सांसारिक बंधनों से मुक्त करवाएगा। हुज़ूर बड़े महाराज जी समझाते हैं:

> *अगर सत्संगी का विश्वास अटूट और अटल है, वह रोज़ाना अभ्यास को वक़्त देता है और उसे कोई दुनियावी ख़्वाहिश नहीं है, तो ऐसी कोई भी ताक़त नहीं है जो उसे दुनिया में वापस ला सके। ऐसी जीवात्माओं का दोबारा जन्म नहीं होता। जन्म उन जीवों का होता है जो अपनी अतृप्त इच्छाएँ लिये रोते हुए मौत को प्राप्त करते हैं।*
>
> परमार्थी पत्र, भाग 2

महाराज चरन सिंह जी ने इसी बात को दोहराते हुए फ़रमाया कि हमारी इच्छाएँ ही हमारे अगले जन्म का कारण बन जाती हैं। हमारा इस संसार में होना इस बात का प्रमाण है कि हमारी इच्छाएँ अधूरी रह गई थीं। हमारी इच्छाओं के कारण ही हमारा प्रारब्ध बना है। हमें अपने आप को निरंतर यह याद दिलाते रहना चाहिए कि हमें क्या माँगना है, क्योंकि हमारी हर इच्छा पूरी की जाएगी, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में।

सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि वे इसी जन्म में पूरी हों। ...आप उससे जो भी चाहते हैं, उससे जो कुछ माँगते हैं, वह आपको ज़रूर देगा। वह आपको देते-देते कभी नहीं थकता, लेकिन आप जो कुछ भी चाहते हैं, उस सब को पाने के लिये आपको फिर दोबारा, बार-बार वापस आना पड़ेगा।

संत संवाद, भाग 1

अब भी, हम अपने प्रारब्ध को स्वीकार करना सीख रहे हैं। यदि हम अपने अंदर झाँकें, तो पाएँगे कि जो ज़िंदगी हमें मिली है उसके अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की ज़िंदगी जीने की हमारी कोई प्रबल इच्छा नहीं है। जब हमें अपने सतगुरु से नामदान मिलता है, हम मान लेते हैं कि अब हमारी ज़िंदगी की बागडोर उनके हाथ में है। हम यह भी मान लेते हैं कि जब से हमें जन्म मिला है, उसी समय से हमारे साथ जो भी हुआ है, सब परमात्मा की मरज़ी से ही हुआ है। परमार्थी पत्र, भाग 1 पुस्तक में, बाबा जैमल सिंह जी फ़रमाते हैं:

जो कुछ करना, कहना है, सब ख़ुद मालिक राधास्वामी जी के हुक्म से होगा। बिना उनके कोई कुछ नहीं कर सकता है। पक्का भरोसा रखो। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है, न कुछ घटा सकता है, न कुछ बढ़ा सकता है।... क्योंकि राधास्वामी अनामी कुलमालिक ने मनुष्य देह धारण करके, कुल कारोबार दुनिया का, स्थूल का कारोबार करके मर्यादा बाँधी हुई है।

इसका अर्थ है कि उसकी मरज़ी से ही हमें इस मार्ग पर इतना लंबा संघर्ष करना पड़ रहा है। कभी-कभी इस कठिन और लंबे संघर्ष के कारण हो सकता है कि हम बेचैन और निराश हो जाएँ। हमने कोशिश की है और हम चाहते हैं कि हमें इन कोशिशों का परिणाम मिले। मगर हम यह स्वीकार करना सीख जाते हैं कि परिणाम सतगुरु के हाथ में है। वह समझाते हैं कि

भजन-सिमरन के लिए की गई हमारी सभी नाकाम कोशिशों से वह ख़ुश हैं। इन कोशिशों का भी अपना महत्त्व है।

शायद हमें अपनी कोशिशों को अलग नज़रिए से देखना चाहिए। हम भजन-सिमरन इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि हमारे सतगुरु ने हमें ऐसा करने को कहा है और हम अपने सतगुरु की ख़ुशी चाहते हैं। इसलिए नहीं कि हमें कुछ हासिल करना है या किसी तरह की सफलता प्राप्त करनी है। हमें भरोसा है कि हर तरह का भजन-सिमरन, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सतगुरु उससे हमारे कर्मों का भुगतान करवा रहे हैं; हमारे मोह के बंधनों को काट रहे हैं।

इसलिए हमें कोई माँग रखे बिना और विनती किए बिना, दीनता से उनके हुक्म का पालन करते हुए भजन-सिमरन करना चाहिए। भले ही हमें लगे कि भजन-सिमरन से हमारी तरक़्क़ी नहीं हो रही है फिर भी हमें उनका हुक्म मानकर बैठ जाना चाहिए।

कुछ और नहीं तो, भजन-सिमरन से कम से कम हमारा अहंकार तो समाप्त होता ही है। हमें विनम्र बनाने के लिए भजन-सिमरन से कारगर शायद ही कुछ और है! और आख़िरकार हम यह जान जाते हैं कि हमें कोई उम्मीद रखे बिना भजन-सिमरन करना चाहिए।

जीवत मरिए भवजल तरिए पुस्तक में महाराज जी के वचन हैं कि भले ही हमारा भजन-सिमरन अच्छा न हो, तो भी, इस समय हम जो हैं, उससे बेहतर बनने की प्रक्रिया में हैं। भजन-सिमरन द्वारा तथा उसकी मौज में रहने से, हम धीरे-धीरे अधिक निर्मल होते जाते हैं। विकास की यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक हम उसके नूरी स्वरूप में समाने के क़ाबिल नहीं बन जाते।

> *अपने आप को प्रभु के सुपुर्द कर दें। किसी से प्रेम करने का अर्थ है अपने आप को दे देना और बदले में कुछ भी पाने की आशा न रखना। अपने आप को दे देना, पूरी तरह से प्रभु को समर्पण कर देना,*

अपने आप को उसकी मौज पर छोड़ देना भी भजन ही है।...प्रेम में हमारी 'मैं' नहीं रहती। हम अपनेपन को खो देते हैं, समर्पित हो जाते हैं, परमात्मा की मौज में अपने आप को छोड़ देते हैं।...जितना ज़्यादा हम देते हैं, उतना ही हमारा प्यार बढ़ता है, उतना ही हम अपने आप को खोते हैं, उतना ही हम परमात्मा का रूप बनते जाते हैं।

जीवत मरिए भवजल तरिए

सतगुरु की शरण लेना

हम कठिनाइयों से भरे संसार में रहते हैं, इसलिए हमें यहाँ मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। ऐसा समय भी आता है जब हमारे किसी अपने का निधन हो जाता है; जब हम किसी बीमारी से जूझ रहे होते हैं; या ऐसा लगता है कि हमारा परिवार टूटने जा रहा है। ऐसा दौर भी आता है जब हमें अपना परमार्थी जीवन नीरस प्रतीत होता है। हमें महसूस होता है कि किसी को हमारी परवाह नहीं है।

हम मानें या न मानें, हमें इन मुश्किल घड़ियों के लिए शुक्रगुज़ार होना चाहिए। महाराज चरन सिंह जी अक़सर फ़रमाया करते थे कि दु:ख वास्तव में छिपी हुई दया-मेहर है, क्योंकि ऐसे समय में हम परमात्मा के बहुत नज़दीक चले जाते हैं। चाहे यह सुनने में कड़वा लगे, परिवार में किसी का निधन, आर्थिक समस्याएँ, बीमारी या तिरस्कार, ये सभी उसकी दया की निशानियाँ हैं क्योंकि जो कुछ भी हमारा ध्यान परमात्मा की तरफ़ ले जाता है, वह दया है।

हमारे हिसाब से, एक अच्छे जीवन-साथी, आरामदायक घर, समृद्ध जीवन इत्यादि का प्राप्त होना ही दया-मेहर है। पर दया-मेहर के बारे में संतों की विचारधारा अलग है। महाराज जी के वचन हैं:

> *वह आपकी पत्नी, आपके बच्चे या आपके दोस्त को वापस बुला सकता है और आप इस रचना से उचाट होकर परमात्मा की तरफ़ रुख़ कर लेते हैं। हो सकता है कि परमात्मा संसार के मोह के बंधनों से बाहर निकालने के लिये आप पर दया-मेहर कर रहा हो, ताकि आपको इस संसार की असलीयत का ज्ञान हो जाये। यदि वह ऐसा न करे तो आपका ध्यान कभी उसकी ओर नहीं जायेगा। आप अपने प्रेम में, अपनी कामयाबियों और अपनी धन-दौलत में इतने ज़्यादा मग्न हो गये थे कि आप उसे बिलकुल ही भूल गये थे। यह उसकी दया-मेहर*

नहीं है। उसकी दया-मेहर तो वह है, जो आपको उसके पास वापस खींच ले और हो सकता है कि वह बहुत कड़वी दवा हो।

संत संवाद, भाग 1

दुःख की घड़ी में हम सतगुरु के प्रति प्यार को अपना सहारा बनाकर अपना संतुलन क़ायम रख सकते हैं, फिर चाहे हमें ऐसा क्यों न लगे कि सतगुरु के लिए हमारा प्यार बहुत कम है या हमें सतगुरु से प्यार ही नहीं है।

ऐसा भी हो सकता है कि मुश्किलों का सामना करते हुए हम उसकी मौजूदगी और उसके प्रेम को महसूस न कर पाएँ। ऐसे समय में, हम उन लोगों से सुख की आशा रखते हैं, जो हमारे नज़दीक होते हैं। मगर हमारा अनुभव हमें सिखाता है कि मानवीय रिश्तों से सच्चे प्रेम की उम्मीद रखना मूर्खता है क्योंकि इनसानी प्रेम अस्थायी है। सतगुरु और शिष्य का प्यार ही चिरस्थायी है क्योंकि वास्तव में यह परमात्मा और आत्मा का आपसी प्रेम है।

हम इस तरह के प्यार को कैसे बढ़ा सकते हैं? महाराज जी, पुस्तक संत संवाद, भाग 2 में इसका बहुत स्पष्ट उत्तर देते हैं:"प्रेम में हम हमेशा देते ही देते हैं।... इसमें सिर्फ़ देना ही देना है।" प्यार का मतलब है देना, उस हद तक देना कि आपाभाव ही समाप्त हो जाए।

वास्तव में हमें तो सिर्फ़ अपना समय और ध्यान देना है—रोज़ाना सिर्फ़ ढाई घंटे भजन-सिमरन का अभ्यास करना है। यह सतगुरु के प्रति हमारे प्यार और आभार को प्रकट करने का भाव है।

प्रश्न-उत्तर के लगभग हर कार्यक्रम में कोई न कोई सतगुरु के प्रति आभार ज़रूर प्रकट करता है। महाराज जी उनकी कृतज्ञता के इस भाव का उत्तर इन शब्दों में देते हैं:

दरअसल, हमारे पास उसका शुक्रिया अदा करने के लिये कोई शब्द ही नहीं हैं, जो कुछ भी मालिक या सतगुरु इस ज़िंदगी में हमारे लिये करते हैं, हम इस ज़ुबान से कभी उसका शुक्रिया कर ही नहीं सकते।

हमारा पूरा जीवन और ये सब नियामतें परमात्मा की बख़्शिश से ही हैं। यह मनुष्य-जन्म उसकी दया-मेहर के अलावा और कुछ नहीं है।

संत संवाद, भाग 3

परमात्मा और सतगुरु की अपार दया-मेहर से ही हमें सब कुछ प्राप्त हुआ है। हम कुछ समय निकालकर, प्रेमपूर्वक भजन-सिमरन करने की कोशिश कर के सही मायने में उनका शुक्रिया अदा कर सकते हैं। हमारी इन्हीं कोशिशों से वे सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं।

हुक्म में रहकर, भजन-सिमरन को पूरा समय देकर, अपने प्रारब्ध कर्मों का ख़ुशी-ख़ुशी भुगतान करना मुमकिन है। हो सकता है कि यह मुश्किल हो, मगर फिर भी यह मुमकिन है। हमें संतमत को अपने जीवन की बुनियाद बनाना पड़ेगा और भजन-सिमरन को अपनी हस्ती का सार। हमें भजन-सिमरन को प्राथमिकता देनी होगी, चाहे हम कर्मों के किसी भी दौर से क्यों न गुज़र रहे हों। एकाग्रचित्त होकर अभ्यास करने से हमारे दृष्टिकोण और व्यवहार में बदलाव आता है, जिससे हम बेहतर इनसान बनते हैं, जैसे कि हमारे सतगुरु चाहते हैं कि हम बनें। जैसे-जैसे हमारे अंदर ये बदलाव आते हैं, हमारा अहंकार कम होना शुरू हो जाता है और हमारा ध्यान ख़ुद के बजाय सतगुरु पर केंद्रित होता जाता है। अहंकार हमारी रूहानी उन्नति में मुख्य रुकावट है।

हउ जीवा नाम धिआए पुस्तक में अहंकार की तुलना समुद्र में तैर रही पानी से भरी काँच की बोतल से की गई है:

हम अपने आप को पानी समझने के बजाय बोतल समझ रहे हैं। जब बोतल किसी चट्टान के साथ टकराकर चूर-चूर हो जाएगी तो पानी, पानी में समा जाएगा। फिर हमारा अलग अस्तित्व कहाँ रह जाएगा? फिर एक क़तरा भी बाक़ी नहीं रहेगा और यह समुद्र में मिलकर समुद्र का रूप हो जाएगा।

अहंकार का नाश करके हमें एहसास होता है कि वास्तव में हम निर्मल चेतना और असीम प्रेम का रूप हैं। पर इस सत्य का अनुभव हमें तभी होता है जब हम अहंकार से मुक्त होकर परमात्मा-रूपी समुद्र में समा जाते हैं।

इस अनुभूति में सिमरन की भूमिका बहुत अहम है, यह बहुत ज़रूरी है कि सिमरन सांसारिक विचारों का स्थान ले ले। इससे अहंकार पर विजय प्राप्त करने में मदद मिलती है, जिससे आत्मा सभी बंधनों से मुक्त हो जाती है। हमारा अहंकार ही हमें परमात्मा की शरण में जाने से रोकता है, जबकि परमात्मा हमें अपनी शरण में लेने के लिए तैयार है।

अहंकार को त्याग देना प्रेम का बुनियादी सिद्धांत है, जहाँ प्रेमी की इच्छाएँ प्रियतम की मरज़ी के अधीन हो जाती हैं और ख़ुदी प्रियतम में फ़ना हो जाती है। अहंकार के समाप्त होने पर सांसारिक बंधन ढीले पड़ जाते हैं, जिससे धीरे-धीरे आत्मा इस मायामय संसार से ऊपर उठकर प्रियतम में समा जाती है।

प्रभु-प्रेम के कारण विरह की तीव्र भावना के उत्पन्न होने से हो सकता है कि अध्यात्म का सच्चा जिज्ञासु कभी-कभी ख़ुद को बहुत अकेला महसूस करे। हालाँकि, हृदय में विरह की यह तीव्र भावना वह प्रार्थना है जो निरंतर चलती रहती है। इसी प्रार्थना के फलस्वरूप परमात्मा आत्मा को अपने नज़दीक ले आता है।

कितनी अजीब बात है, हम जितना उसके क़रीब जाते हैं, हमें लगता है कि वह हमसे उतना ही दूर है क्योंकि उसके लिए हमारी तड़प बढ़ती जाती है। पुस्तक *किताब-ए-मीरदाद* में जुदाई की इस तीव्र तड़प और महाविरह का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

ज्वर के समान है यह महाविरह। जैसे शरीर में सुलगा ज्वर शरीर के विष को भस्म करते हुए धीरे-धीरे उसकी प्राण-शक्ति को क्षीण कर देता है, वैसे ही अन्तर की तड़प से जन्मा यह विरह मन के मैल तथा मन में एकत्रित हर अनावश्यक विचार को नष्ट करते हुए मन को निर्बल बना देता है।

एक चोर के समान है यह महाविरह। जैसे छिप कर अन्दर घुसा चोर अपने शिकार का भार तो कुछ हलका करता है, पर उसे बहुत दुखी कर जाता है, वैसे ही यह विरह गुप्त रूप से मन के सारे बोझ तो हर लेता है, पर ऐसा करते हुए उसे बहुत उदास कर देता है और बोझ के अभाव के ही बोझ तले दबा देता है।

पुस्तक के लेखक मिख़ाइल नईमी द्वारा महाविरह के बारे में किया गया यह वर्णन एक निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करता है। मगर हमें निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि परमात्मा भी अपने भक्त के लिए तड़पता है। उसने स्वयं हमारे अंदर उसे जानने की और उसकी शरण लेने की तीव्र इच्छा—भूख—पैदा की है। इसलिए हम भजन-सिमरन करते हैं और जब हम भजन-सिमरन द्वारा उसके नज़दीक होते हैं तो उसका हृदय प्रसन्न हो जाता है।

हम इस सफ़र में अकेले नहीं हैं। जब हम ख़ुद को तनहा पाते हैं और परमात्मा को महसूस कर पाना मुश्किल होता है, तब भी सतगुरु सदा हमारे अंग-संग होते हैं। वह हमारा आश्रय और ताक़त हैं, जो मुश्किल के समय हमेशा मौजूद रहते हैं। वह हमारे लिए, हमसे भी कहीं अधिक उत्सुक हैं कि हम अपने इस रूहानी सफ़र में सफल हों। ज़िंदगी में हमारे सामने कई चुनौतियाँ आती हैं, मगर यदि हम ईमानदारी से भजन-सिमरन करते हुए, उनका हाथ थामे रखते हैं तो हमें हमेशा ही उनका आश्रय और सुरक्षा प्राप्त होगी।

जब एक सत्संगी ने महाराज चरन सिंह जी से कहा कि उसे बहुत डर लगता है कि वह सतगुरु के देहस्वरूप की मौजूदगी वाले माहौल को खो देगा, तो महाराज जी ने उनसे पूछा: "क्या आपको यक़ीन है कि जब मैं यहाँ मौजूद नहीं होता, तब मैं आपके साथ नहीं होता?" आपने आगे फ़रमाया:

> *अगर हम सिर्फ़ इतना जान लें और समझ सकें कि हम कभी अकेले नहीं होते, हमारा सतगुरु हमेशा हमारे साथ होता है, हम कभी उसके बग़ैर नहीं होते, तो हमेशा वही माहौल बना रहेगा। हम अपने आप को यह बताने की कोशिश करते हैं कि वह यहाँ नहीं है जब कि असल में वह यहाँ हमारे साथ होता है। इसलिये हमें बस यही यक़ीन होना चाहिये कि वह हमेशा हमारे साथ होता है।*
>
> संत संवाद, भाग 3

धर्मपरायणता का रथ
रामचरितमानस से उद्धरित

सोलहवीं शताब्दी में जब गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना की तो उन्होंने अपना आध्यात्मिक संदेश देने के लिए प्राचीन महाकाव्य महर्षि वाल्मीकि रामायण की रोचक कथा को इसका आधार बनाया। इस महाकाव्य में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार परमात्मा ने श्रीराम के मानवीय रूप में पृथ्वी पर अवतार लिया, एक राजकुमार के रूप में उनका लालन-पालन हुआ और सीता जी से उनका विवाह हुआ। इसमें श्रीराम के जीवन की सभी घटनाओं जैसे श्रीराम का वनवास, वन में रावण द्वारा सीता जी का अपहरण, सीता जी की खोज और सीता जी को मुक्त कराने के लिए रावण और उसकी राक्षस सेना के साथ युद्ध का विस्तृत वर्णन है।

भरद्वाज मुनि प्रयाग में स्थित अपने आश्रम में रहते थे। वह प्रभु राम के परम भक्त थे। एक बार उन्होंने प्रसिद्ध परम ज्ञानी और विवेकी ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ कुछ समय बिताया।

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥

रावण लंका का राक्षसराज था... वह वेदों का महान पंडित था, सीता जी को पाने की लालसा के कारण वह अपना सारा विवेक खो बैठा।

विभीषण रावण के भाई थे, परन्तु उन्होंने श्रीराम को अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया।

श्रीराम और रावण के मध्य अंतिम युद्ध आरंभ होने वाला है, तुलसीदास जी उस रथ के बारे में बताते हैं जो विजय की ओर ले जाता है। वह यह दृष्टांत उन लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जो आध्यात्मिक मुक्ति की तलाश करना चाहते हैं और अपने अंदर उन गुणों को विकसित करने की

इच्छा रखते हैं जो मन के साथ लड़ाई जीतने के लिए आवश्यक हैं...फिर रावण अपने दिव्य रथ पर सवार हो गया जो वायु जैसी तेज़ गति से दौड़ सकता था।...

विभीषण युद्ध देखकर बहुत चिंतित हो रहे थे क्योंकि रावण अपने युद्धरथ पर सवार था और श्रीराम के पास कोई रथ नहीं था। प्रभु राम के प्रति अत्यधिक प्रेमवश उसके हृदय में संदेह पैदा हुआ और आगे बढ़कर उसने प्रणाम किया और कहा, "हे प्रभु! आप इस पराक्रमी योद्धा पर कैसे विजय प्राप्त करेंगे? आपके पास न ही कोई रथ है और न ही आपके पास शरीर के लिए कोई कवच और पाँवों की रक्षा के लिए जूते हैं।"

विभीषण की शंकाओं और भय का निवारण करने के लिए श्रीराम ने अपने मित्र से प्रेमपूर्वक कहा, "प्रिय मित्र ! सुनो, जो रथ विजय की ओर ले जाता है, वह अलग है।"

आप कहते हैं:

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

अर्थात् वीरता और धैर्य इस रथ के दो पहिए हैं। सत्य और सदाचार का दृढ़ता से पालन इसकी ध्वजा और पताका हैं। इस रथ को बल, विवेक, आत्मानुशासन और परोपकार—ये चार घोड़े खींचते हैं जो क्षमा, करुणा और मन की समरसता की लगाम द्वारा नियंत्रित होते हैं। परमात्मा के प्रति भक्ति ही धर्मरथ* का बुद्धिमान सारथी है और वैराग्य इसकी ढाल है। संतोष

* धर्मपरायणता का रथ।

इसकी कटार है, दान-पुण्य फरसा है, बुद्धि सबसे शक्तिशाली अस्त्र है और उच्चतम ज्ञान कठोर और न टूटने वाला धनुष है। निर्मल और स्थिर मन तरकश के समान है और शांति, आत्मसंयम और निर्धारित नैतिक सिद्धांतों और नियमों का पालन नुकीले बाण हैं। ज्ञानीजनों और अपने सतगुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति अभेद्य कवच की भाँति रक्षा करते हैं। विजय प्राप्त करने के लिए इन सब गुणों से अधिक प्रभावशाली और कुछ नहीं हो सकता। हे मित्र! जिसके पास धर्मपरायणता का ऐसा रथ है, उसका कहीं भी कोई शत्रु नहीं होता जिस पर उसे विजय प्राप्त करनी पड़े।

श्रीराम के प्रति बारंबार अपना प्रेम प्रकट करते हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम को शीश नवाया।

तुलसीदास जी हमें बताते हैं कि हम केवल धर्मरथ यानी धर्मपरायणता के रथ पर सवार होकर ही विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह रथ कोई बाहरी नहीं है बल्कि यह हमारे भीतर है।